September 2021

TE|SF
Transforming Education
for Sustainable Futures

ट्रांसफ़ॉर्मिंग एजुकेशन फॉर सस्टेनेबल फ़्यूचर्स
सुरक्षित भविष्य के लिए शिक्षा का रूपांतरण
बैकग्राउंड पेपर - भारत

विषय सूची

सारांश ४
भारत में शिक्षा की स्थिति ६
  ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ८
समकालीन चुनौतियां १०
  स्कूली शिक्षा ११
  अध्यापक और उसकी शिक्षा १४
  उच्च शिक्षा १७
शिक्षा के क्षेत्र में शोध के विषय २२
जलवायु परिवर्तन की शिक्षा २३
  भारत पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव २३
  जलवायु परिवर्तन एवं टिकाऊ विकास लक्ष्य (एसडीजी) २४
  भारत में जलवायु परिवर्तन शिक्षा २४
जलवायु परिवर्तन शिक्षा के क्षेत्र में संभावित शोध विषय २८
टिकाऊ शहरों एवं समुदायों के लिए शिक्षा २९
  शहरी असुरक्षाओं का समाधान ३०
  टिकाऊ विकास लक्ष्यों का शहरी प्रसंग ३१
  टिकाऊ शहरों एवं समुदायों के लिए शिक्षा ३१
टिकाऊ शहरों और समुदायों के लिए शिक्षा से संबंधित शोध विषय ३२
टिकाऊ विकास हेतु शिक्षा ३३
टिकाऊ विकास शिक्षा से संबंधित शोध विषय ३६
निष्कर्ष ३६

संकेताक्षरों की सूची एवं शब्दावली

सीबीएसई	केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन)
सीसीई	जलवायु परिवर्तन शिक्षा (क्लाइमेट चेंज एजुकेशन)
सीडीआरआई	कोअलिशन फॉर डिज़ास्टर (ऐण्ड क्लाइमेट) रेज़ीलिएंट इन्फ्रास्ट्रक्चर
सीईई	सेंटर फॉर एन्वायर्नमेंटल एजुकेशन
सीएसई	सेंटर फॉर साईंस ऐण्ड एन्वायर्नमेंट
डीईसीई	जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी एजुकेशन प्रोग्राम)
ईएफए	सबको शिक्षा (एजुकेशन फॉर ऑल)
ईएसडी	टिकाऊ विकास हेतु शिक्षा (एजुकेशन फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट)
ईडब्ल्यूएस	आर्थिक रूप से पिछड़े तबके (इकोनॉमिकली वीकर सेक्शंस)
जीडीपी	सकल घरेलू उत्पाद (ग्रॉस डोमेस्टिक प्रोडक्ट)
जीईआर	सकल दाखिला दर (ग्रॉस एनरोलमेंट रेट)
एचईआई	उच्च शिक्षा संस्थान (हायर एजुकेशन इंस्टीट्यूशंस)
आईआईएचएस	इंडियन इंस्टीट्यूट फॉर ह्यूमन सेटलमेंट्स
आईएलके	देशज एवं स्थानीय ज्ञान (इंडिजिनस ऐण्ड लोकल नॉलेज)
आईपीसीसी	अंतर्सरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल (इंटर-गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज)
जेवीसी	न्यायमूर्ति वर्मा आयोग (जस्टिस वर्मा कमीशन)
एमईसीसीसी	जलवायु परिवर्तन प्रबंधन शिक्षा केंद्र (मैनेजमेंट एजुकेशन सेंटर ऑन क्लामेट चेंज)
एमआईटी	मेसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी
एनसीईआरटी	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (नैशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च ऐण्ड ट्रेनिंग)
एनसीएफ	राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (नैशनल करिक्युलम फ्रेमवर्क)
एनसीटीई	राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा परिषद (नैशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन)
एनसीएफटीई	शिक्षक-शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपेरखा (नैशनल करिक्युलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन)
एनईपी	राष्ट्रीय शिक्षा नीति (नैशनल एजुकेशन पॉलिसी)
एनजीओ	गैर-सरकारी संगठन (नॉन-गवर्नमेंटल आर्गेनाइजेशंस)
एनकेसी	राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (नैशनल नॉलेज कमिशन)
एनसीई	शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति (नैशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन)
एनपीओ	लाभ निरपेक्ष संस्थाएं (नॉन-प्रॉफिट आर्गेनाइजेशंस)
एनयूए	न्यू अर्बन एजेंडा
ओबीसी	अन्य पिछड़ी जातियां (अदर बेकवर्ड कास्ट्स)
एससी	अनुसूचित जातियां (शेड्यूल्ड कास्ट्स)
एसडीजी	टिकाऊ विकास लक्ष्य (सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल)

एसएसए	सर्वशिक्षा अभियान
एसटी	अनुसूचित जनजातियां (शेड्यूल्ड ट्राइब्स)
टीईआई	शिक्षक शिक्षा संस्थान (टीचर एजुकेशन इंस्टीट्यूट्स)
टीईएसएफ	टिकाऊ भविष्य हेतु रूपांतरकारी शिक्षा (ट्रांसफॉर्मिंग एजुकेशन फॉर सस्टेनेबल फ्यूचर्स)
यूईई	प्रारंभिक शिक्षा सार्विकीकरण (युनिवर्सिलाइजेशन ऑफ एलीमेंटर एजुकेशन)
यूजीसी	विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (युनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन)
यूपीपी	अर्बन प्रेक्टिशनर्स प्रोग्राम
यूसीएल	युनिवर्सिटी कॉलेज लंदन
यूसीसी	युनिवर्सिटी ऑफ केपटाऊन
यूएफएबीसी	फेडरल युनिवर्सिटी ऑफ एबीसी (क्षेत्र), साओ पाओलो

नीति आयोग : नीति (नैशनल इंस्टीट्यूट फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया) आयोग भारत सरकार की नीतियों पर विचार करने वाला एक संस्थान है जो दीर्घकालिक नीतियों व कार्यक्रमों के निर्धारण व क्रियान्वयन के विषय में केंद्र और राज्य सरकारों को तकनीकी सलाह व मार्गदर्शन देता है।

ओबीसी : अदर बेकवर्ड क्लासेज़ अथवा अन्य पिछड़ा वर्ग का आशय ऐसी “अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं नागरिकों के ऐसे पिछड़े वर्गों से है जिनका भारत सरकार द्वारा नियुक्तियों अथवा पदों में आरक्षण हेतु जारी की जाने वाली सूचियों में समय-समय पर उल्लेख किया जाता है।”

आरटीई : आरटीई कानून का पूरा नाम ‘बालकों की निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिकार कानून, 2009’ है। इसका मुख्य उद्देश्य ये है कि “6 से 14 साल के आयु वर्ग में आने वाले सभी बच्चों को निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाए।” यह कानून स्तरीय प्रारंभिक शिक्षा मुहैया कराने के लिए एक विधायी रूपरेखा की भूमिका निभाता है।

अनुसूचित जाति (एससी) : अनुसूचित जातियों की श्रेणी में “ऐसी जातियां, नस्ल या कबीले या उन जातियों, नस्लों या कबीलों के समूह आते हैं जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 341 के तहत अनुसूचित जातियों की सूची में रखा जाता है।”

अनुसूचित जनजाति (एसटी) : अनुसूचित जनजाति का आशय ““ऐसे कबीलों या उनके तहत आने वाले समूहों से है जिन्हें संबंधित राज्य या संघशासित प्रदेश में संविधान के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया है।”

एसएसए : सर्वशिक्षा अभियान कार्यक्रम 2000-2001 से लागू किया जा रहा है। इस कार्यक्रम में इस बात पर जोर दिया जाता है कि सभी को शिक्षा दी जाए, बच्चे पढ़ाई ना छोड़ें, प्रारंभिक शिक्षा में लैंगिक एवं सामाजिक फासला खत्म हो और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार आए।

सर्वोच्च न्यायालय : भारत का सर्वोच्च न्यायालय भारत सरकार का शीर्षस्थ न्यायिक संस्थान है। देश का सबसे वरिष्ठ और शीर्षस्थ न्यायालय होने के नाते सर्वोच्च न्यायलय के पास न्यायी समीक्षा का अधिकार भी होता है। इसका नेतृत्व भारत के मुख्य न्यायाधीश करते हैं। वह 35 अन्य न्यायाधीशों के साथ न्यायालय चलाते हैं।

पैरा-टीचर : पैरा-टीचर ऐसे अध्यापकों को कहा जाता है जो बहुधा (हमेशा नहीं) समुदाय द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। उन्हें सामान्य शिक्षकों को मिलने वाले वेतनमान से कम वेतन मिलता है। वे औपचारिक व वैकल्पिक, दोनों प्रकार के विद्यालयों में न्यूनतम समय के भीतर सीमित आर्थिक संसाधनों के सहारे बेसिक शिक्षा की जरूरत को पूरा करने में मदद देते हैं।

सारांश

भारत की शिक्षा व्यवस्था आजादी के बाद भी औपनिवेशिक शासन द्वारा डेढ़ सौ साल तक सींची गई संस्थागत संरचनाओं और मूल्यों में सांस ले रही थी। आधुनिकता के संकुचित व्यक्तिवादी एवं आर्थिक उद्देश्यों की उपनिवेशवाद-विरोधी वृत्तांतों में निहित समालोचना के बावजूद बहुत सारे राष्ट्रवादी नेता भी परंपरा बनाम आधुनिकता, मनोगत बनाम वस्तुनिष्ठ ज्ञान जैसे दो-ध्रुवीय ज्ञानशास्त्रीय आधारों पर प्रश्न उठाने से कतराते थे। शिक्षा में समानता से जुड़े प्रश्न, जो जाति विरोधी विमर्श और आंदोलनों से पैदा हुए थे, भारत की आजादी के लिए चले उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष से भी पुराने थे। इसके बावजूद राष्ट्रवादी नेताओं ने ब्राह्मणवादी वर्चस्व और पितृसत्ता को चुनौती देने के लिए आवश्यक ज्ञानशास्त्रीय बिंदुओं को जोड़ने की कोशिश नहीं की जोकि भारतीय राज्य की स्थापना व रचना के प्रसंग में चली बहस में बहुत बड़ी ताकतें थी।

समकालीन भारत के अधिकांश शैक्षिक विमर्श एवं व्यवहार पर इन औपनिवेशिक जड़ों की छाप तो है ही, नब्बे के दशक में शुरू किए गए नवउदारवादी सुधारों का असर भी इन पर साफ देखा जा सकता है। उदारीकरण के शुरुआती सालों से भारत में जो शैक्षिक सुधार किए गए हैं उनसे स्कूली शिक्षा की उपलब्धता व व्यवहार तथा शिक्षक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में व्यवस्थागत बदलाव आए हैं। शिक्षा के निजीकरण को समर्पित राजनीति तथा स्तरीय सार्वभौमिक शिक्षा की चुनौतियों से जूझने के नाम पर अपनाये गए आधे-अधूरे समाधानों और रैखिक वृद्धि पर जोर देने वाली नौकरशाही ने संविधान से निकली नीतिगत रूपरेखा को लगातार कमजोर किया है।

आर्थिक तरक्की के नाम पर मानव विकास और सामाजिक न्याय की उपेक्षा करने वाले शैक्षिक सुधारों के इन दशकों के अनुभवों से ये स्थिति पैदा हुई है। शिक्षा में सरकारी निवेश कम हुआ है और इस निवेश का भी मुख्य जोर भौतिक बुनियादी ढांचा खड़ा करने पर रहा है। सरकारी स्कूलों में अध्यापकों की संख्या आवश्यकता के अनुसार तेजी से नहीं बढ़ रही है। शैक्षिक रूप से पिछड़े राज्यों में यह विस्तार और भी धीमा है। शिक्षकों के पास पेशेवर विकास व सहायता के अवसरों का अभाव है। अध्यापकों की निर्णय-क्षमता और अधिकारों में कटौती हुई है। पाठ्यचर्या को एक-दूसरे से अलग-थलग लर्निंग आऊटकम्स में समेट दिया गया है। अध्यापन को साधारण बौद्धिक सोच व कौशल के स्तर पर समेट दिया गया है और एक ऐसी अनकही नीति लागू की जा रही है जो समतापरक और स्तरीय शिक्षा का लक्ष्य हासिल करने के नाम पर वास्तव में अध्यापकों की व्यापक भूमिका को कमजोर करती है।

इसका परिणाम ये है कि भारतीय सरकारी स्कूल व्यवस्था अभी भी ज्यादातर बच्चों को बढ़िया शिक्षा नहीं दे पाती और परिणामस्वरूप बच्चों के सीखने का स्तर अपेक्षा के अनुसार नहीं रहता। ऐसा तब है जबकि भारत सरकार पिछले दशक में ही शिक्षा अधिकार कानून (आरटीई) पारित कर चुकी है और इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में प्रगतिशील स्कूली पाठ्यचर्या एवं शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या के क्षेत्र में एक बहुत प्रखर विमर्श सामने आया है। इसी दौरान उच्च शिक्षा की व्यवस्था भी लगातार परतबद्ध होती गई है और आज यह ऐसे निजी हितों से संचालित हो रही है जिनकी सामाजिक समावेशन या स्तरीय शिक्षा के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं है।

शिक्षक शिक्षा व्यवस्था का लगातार व्यवसायीकरण हुआ है जिसकी वजह से इस पर निजी ताकतों व संस्थाओं का दबदबा कायम होता जा रहा है। उच्च शिक्षा तथा स्कूली शिक्षा नीति के बीच मौजूद फासले से इस प्रवृत्ति को और बढ़ावा मिल रहा है। स्कूली शिक्षकों की शिक्षा पर निजी संस्थाओं और हितों के इस वर्चस्व से समता व सामाजिक न्याय की संवैधानिक प्रतिबद्धता लगातार कमजोर हुई है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए हस्तक्षेप तो किया है मगर शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय विशाल निजी क्षेत्र और एक समझौतापरस्त सरकारी नौकरशाही का गठजोड़ अभी भी शिक्षक शिक्षा नीति को अपने हिसाब से तय कर रहा है। शिक्षा अधिकार कानून में पिछले सालों के दौरान कई ऐसे संशोधन किए गए हैं जिनकी वजह से शिक्षा अधिकार के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता बहुत कमजोर हो गई है। इसके चलते देश भर के सरकारी स्कूलों में दाखिलों में गिरावट भी आई है। हाल ही में पाठ्यचर्या व शिक्षाशास्त्र के प्रसंग में चली वैचारिक खींचतान से असमानता पर

आधारित समाज में नई और कठिन चुनौतियां पैदा हुई हैं।

आजादी के बाद पहले तीन दशकों के दौरान भारतीय राज्य विज्ञान और तकनीक, उत्पादकता में इजाफे और आत्मनिर्भरता की दिशा में प्रतिबद्ध था और लिहाजा उच्च शिक्षा में निवेश पर ज्यादा जोर दिया जा रहा था। इसके बावजूद उच्च शिक्षा के क्षेत्र में चुनौतियां पूरी तरह खत्म नहीं हो पाईं। पिछले छह दशकों के दौरान उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तय और लागू की गई नीतियों और कार्यक्रमों से पता चलता है कि हमारा देश सरकारी वर्चस्व वाली उच्च शिक्षा व्यवस्था से निजी क्षेत्र के व्यापक प्रभाव वाली शिक्षा व्यवस्था में तब्दील होता जा रहा है।

निजी शिक्षा संस्थाएं आमतौर पर मुनाफे के मकसद से चलाई जा रही हैं, फिर भी सर्वोच्च न्यायालय ने इस बारे में स्पष्ट फैसले दिए हैं कि शिक्षा में मुनाफाखोरी को केंद्रीय उद्देश्य ना बनाया जाए। न्यायालय ने अपनी व्याख्याओं में शिक्षा संस्थानों को परोपकारी संस्थान का दर्जा भी दिया है। इसके बावजूद व्यवहार के धरातल पर शिक्षा संस्थानों के अनियंत्रित फैलाव, खासतौर से मुनाफे के लिए चलने वाले उच्च शिक्षा संस्थानों के फैलाव से शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायीकरण की रफ्तार बहुत तेज हो गई है। दिन प्रतिदिन फैलती निजी उच्च शिक्षा व्यवस्था ने शैक्षिक विस्तार का आर्थिक बोझ सरकार या समाज के कंधों से नागरिकों के कंधों पर धकेल दिया है।

बाजार आधारित सुधारों तथा शिक्षा के संवैधानिक लक्ष्यों की खाई लगातार और तीखी हुई है क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में सार्वजनिक एवं सामाजिक चिंताओं के मुकाबले संकुचित निजी आर्थिक हितों को ज्यादा प्राथमिकता दी जाने लगी है। इसका एक मुख्य नकारात्मक नतीजा यह हुआ है कि सामाजिक न्याय की चिंताओं को स्तरीय शिक्षा की चिंताओं से अलग कर दिया गया है जबकि सामाजिक न्याय का सरोकार संविधान केंद्रित शैक्षिक नीति का चालक बिंदु रहा है।

यह बात कोविड-19 महामारी के प्रसंग में सामने आई राज्य की प्रतिक्रिया में भी साफ देखी जा सकती है। जब महामारी फैलना शुरू हुई तो सरकार ने रातोंरात देश भर के शिक्षा संस्थानों को बंद कर दिया और अगले छह माह तक सभी शिक्षा संस्थान बंद रहे। इसके बाद भी राज्य ऑनलाईन अध्यापन और परीक्षाओं पर ही जोर दे रहा है जबकि विद्यार्थियों के बीच आर्थिक व सामाजिक गैरबराबरी बहुत ज्यादा है जिसके चलते तकनीक तक सबकी पहुंच एक जैसी नहीं है। डिजिटल पाठ्यचर्या सामग्री की उपलब्धता भी एक बड़ी समस्या है।

सामाजिक बेदखली और असमानता लगातार बढ़ती दिखाई देती हैं। इसका मुख्य कारण ये है कि निजी हित और परंपरागत सामाजिक विशेषाधिकारों में एक तालमेल पैदा हो गया है। फलस्वरूप, उच्च जातियों और उच्च वर्गों में एक तरह का समन्वय है। दूसरी तरफ, राज्य अपनी जिम्मेदारी से हाथ खींचता जा रहा है जबकि शिक्षा के क्षेत्र में अवसरों का समान वितरण उसे ही सुनिश्चित करना था। भारतीय विश्वविद्यालयों में बेदखली की चुनौती सिर्फ पहुंच या अवसरों के अभाव तक ही सीमित नहीं है जिसको संबोधित करने के लिए एक हद तक आरक्षण का भी सहारा लिया गया है। विभिन्न शोधों से पता चलता है कि उच्च शिक्षा की समूची संरचना संपन्न तबकों को वरीयता देती है जिससे ऊंच-नीच की उन्हीं व्यवस्थाओं को बल मिलता है जिन्हें खत्म करने के लिए यह व्यवस्था तैयार की गई थी। लिहाजा, यह अचंभे की बात नहीं है कि उच्च शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ जेंडर आधारित, सामाजिक और क्षेत्रीय असमानताओं में भी इजाफा हुआ है।

लोक नीति के धरातल पर एक मुख्य सवाल ये है कि शिक्षा व्यवस्था को विस्तार देने के साथ-साथ असमानता पर अंकुश लगाने वाली व्यवस्था कैसे विकसित की जाए। इसके लिए जरूरी है कि स्कूलों, शिक्षक शिक्षा तथा सामाजिक रूप से वंचित तबकों के लिए उच्च शिक्षा में और ज्यादा सरकारी निवेश किया जाए तथा नियमन की एक मजबूत और विकेंद्रीकृत व्यवस्था तैयार की जाए। दुनिया की श्रम शक्ति का मुकाबला करने के लिए हम आधुनिक श्रम शक्ति तैयार करने पर तो जोर दे रहे हैं, खासतौर से उच्च शिक्षा में निजी निवेश के जरिए, मगर विकास संबंधी उद्देश्यों, उदार संवैधानिक-लोकतांत्रिक मूल्यों व सामाजिक समावेशन जैसे लक्ष्यों पर ध्यान देना भी जरूरी है। इतना ही नहीं, पर्यावरणीय टिकाऊपन पर भी बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है।

विशेषज्ञों का मानना है कि जलवायु परिवर्तन से बहुत सारे क्षेत्रों और व्यवसायों पर सीधा असर पड़ने वाला है। इससे विभिन्न समुदाय और महत्वपूर्ण प्राकृतिक तंत्र जोखिम में पड़ सकते हैं। ऐसी स्थिति में ऊर्जा, स्वास्थ्य, भोजन एवं जल सुरक्षा, आवास एवं बुनियादी सेवाओं से संबंधित टिकाऊ विकास लक्ष्यों (सस्टनेबल डेवलपमेंट गोल्स - एसडीजी) को हासिल करने की भारत की क्षमता पर बहुत बुरा असर पड़ेगा। ऐसी स्थिति में हमें जलवायु परिवर्तन से निपटने और उस पर अंकुश लगाने के लिए बड़े पैमाने पर प्रयास करने होंगे और उनकी लागत आर्थिक विकास के व्यापक लक्ष्यों पर भी असर डालेगी। लिहाजा, भारत के लिए ये बेहतर होगा कि हम वायुमंडल विज्ञान, जलवायु परिवर्तन शिक्षा और संस्थागत क्षमतावर्धन के जरिए इस प्रक्रिया पर अंकुश लगाने और खुद को इसके अनुसार ढालने पर जोर दें। फिलहाल इन मदों में हमारी तैयारी संस्थागत स्तर पर बहुत कमजोर दिखाई देती है।

टिकाऊ शहरों और समुदायों के अनुकूल शिक्षा के लिए हमें संबंधित ज्ञान, क्षमताओं और आत्मबल को खंगालना होगा जिससे मानव इतिहास के सबसे विशाल शहरीकरण अभियान को सुगम बनाया जा सके। इस प्रक्रिया को भारत की पेशेवर एवं उच्च शिक्षा व्यवस्था के भीतर अंतर्विषयक शिक्षा के साथ जोड़ना होगा और उसमें इन उद्देश्यों को समाहित करना होगा।

वर्तमान शैक्षिक कार्यक्रमों और इस जरूरत के बीच फिलहाल बहुत बड़ा फासला दिखाई दे रहा है। केवल मुट्ठी भर संस्थान ही इस फासले को पाटने की कोशिश करते दिखाई देते हैं। हमें इन कोशिशों को कई गुना बढ़ाना होगा और ये भी ध्यान रखना होगा कि शैक्षिक व्यवहारों और सुधार पर जो जोर दिया जा रहा है उससे इनमें बाधा ना आए। इसके साथ ही हमें शारीरिक, आर्थिक, पर्यावरणीय एवं सामाजिक अन्याय तथा असुरक्षा को भी संबोधित करना होगा जोकि भारत में सुरक्षित व टिकाऊ शहरीकरण के लिए आवश्यक पूर्वशर्त है। हमें ये संकल्प भी लेना होगा कि 'कोई व्यक्ति, कोई स्थान और कोई पारिस्थितिकी तंत्र पीछे न छूट जाए।'

प्रस्तुत बैकग्राऊंड पेपर में स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में फैली कुछ मुख्य चिंताओं को रेखांकित किया गया है। यहां जो मुद्दे उठाये गए हैं उनको और बेहतर ढंग से समझने और उन पर शोध करने के लिए अनुसंधान के कुछ संभावित बिंदु भी इंगित किए गए हैं। इस बात पर जोर दिया गया है कि हमें ज्ञान, पाठ्यचर्या निर्धारण और शिक्षाशास्त्रीय रणनीतियों के लिए व्यवहार आधारित अनुभवों पर ध्यान देना होगा और उनके सहारे आगे बढ़ना होगा। टिकाऊ विकास हेतु शिक्षा (एजुकेशन फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट - ईएसडी) की रूपरेखा और संभावनाओं को खंगालने के लिए हमें स्कूली तथा उच्च शिक्षा के प्रसंग में पर्यावरणीय, सामाजिक, आर्थिक एवं ज्ञानशास्त्रीय न्याय के प्रश्नों को संबोधित करना होगा; जलवायु परिवर्तन शिक्षा, टिकाऊ शहरों व समुदायों से संबंधित शिक्षा और ईएसडी के बीच समन्वय स्थापित करने होंगे और व्यापक समाज को साझीदार बनाने और सामाजिक शिक्षा को संभव बनाने के लिए नई पद्धतियां ढूंढनी होंगी।

भारत में शिक्षा की स्थिति

भारत की आबादी 136 करोड़[१] है जिसमें से दो तिहाई लोग भारत के 6,50,000 गांवों में रहते हैं। बाकी लोग 8,000 शहरों-कस्बों और 75 से अधिक महानगरों में रहते हैं। अकेले उत्तर प्रदेश की आबादी 18 करोड़ है। यह पश्चिमी यूरोप की आबादी के बराबर है। दुनिया में मुसलमानों की सबसे बड़ी आबादी - 17.2 करोड़ - भारत में है। यह भारत की कुल आबादी का 14 प्रतिशत बैठता है। हमारे यहां 18 अधिकृत भाषाएं हैं जिनमें से प्रत्येक के बोलने वालों की संख्या 3-4 करोड़ के आसपास या उससे अधिक है। इनके अलावा 1,000 से अधिक जीवित बोलियां हैं। दुनिया की गरीब आबादी का एक विशाल भाग दक्षिण एशिया में रहता है और उनमें से भी सबसे ज्यादा तादाद भारत में है। भारतीय समाज में जेंडर, जाति, नृजातीयता, भाषा, धर्म और वर्ग आदि पर आधारित ऐतिहासिक असमानताएं बहुत गहरी हैं। आधुनिकीकरण और विकास की प्रक्रिया में इनमें से कुछ असमानताएं धुधंली हो गई हैं जबकि कुछ और तीखी हो गई हैं।[२]

जब 1947 में भारत आजाद हुआ, उस समय देश की आबादी 36.1 करोड़ थी जिसमें से 27% पुरुष और केवल 9% महिलाएं ही साक्षर थीं (जनगणना, 1951)। उस वक्त देश के 27 विश्वविद्यालयों और लगभग 578[3] कॉलेजों में ग्रॉस एनरोलमेंट रेट (सकल दाखिला दर - जीईआर) 1.7 लाख[४] थी। देश भर में लगभग 2.3 लाख स्कूल थे और 7.51 लाख प्राथमिक स्कूल अध्यापक थे।[५]

---

[1] Source: World Bank (2019).

[२] आधुनिकीकरण की परियोजना तथा विकास की आर्थिक प्रगति केंद्रित धारणा में शिक्षा का बहुत गहरा महत्व होता है। यह बात देश के पहले शिक्षा आयोग (भारत सरकार, १९६६) के दस्तावेजों में भी दिखाई देती है जिसमें विकास को आधुनिक राज्य के पर्यायवाची के रूप में दर्ज किया गया था। शिक्षा आयोग ने इस बात पर खासतौर से जोर दिया था कि शिक्षा आधुनिकता को अपनाने में विशेष भूमिका अदा कर सकती है। इस विषय में और व्यापक चर्चा के लिए देखें (टिकली एवं अन्य, २०२०)।

[३] Source: MHRD (2018a).

[4] Source: MHRD (2011).

[5] Source: MHRD (2014).

इन शैक्षिक संस्थाओं में से एक बहुत छोटा हिस्सा प्राइवेट स्कूलों और निजी उच्च शिक्षा संस्थानों का भी था। ऐसे ज्यादातर स्कूल और संस्थान शहरों में अमीर तबके के लिए चल रहे थे। यह औपनिवेशिक ब्रिटिश शासन की विरासत थी।

साल 2020 में भारत की आबादी बढ़कर 138.5 करोड़[६] हो चुकी है। महिला साक्षरता दर 70% और पुरुष साक्षरता दर 85% हो चुकी है।[७] उच्च शिक्षा में जीईआर 26% है और 993 विश्वविद्यालय चल रहे हैं। देश में 39,931 से ज्यादा कॉलेज हैं।[८] देश के 15 लाख स्कूलों में 85 लाख से अधिक अध्यापक हैं और 25 करोड़ बच्चे शिक्षा ले रहे हैं।[९]

हमारे यहां शिक्षा पर जीडीपी का बहुत छोटा हिस्सा खर्च किया जाता है - स्कूलों पर 2.9 प्रतिशत और उच्च एवं तकनीकी शिक्षा पर 1.5 प्रतिशत[१०] - इसके बावजूद शिक्षा व्यवस्था के भौतिक विस्तार और स्कूलों व उच्च शिक्षा संस्थानों तक पहुंच में उल्लेखनीय इजाफा हुआ है (एमएचआरडी, 2018सी)। प्राथमिक स्तर पर ज्यादा से ज्यादा बच्चों को शिक्षा प्रदान करने की चेष्टाएं हमारे यहां नब्बे के दशक में जाकर शुरू हुईं जबकि उच्च शिक्षा संस्थानों का प्रसार तो अभी भी बहुत तेज नहीं है। एक सेवा क्षेत्र केंद्रित अर्थव्यवस्था में पैदा हो रहे नए-नए अवसरों को देखते हुए ये जरूरत साफ महसूस की जाने लगी है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, हमारे देश में बेसिक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण की कोशिशें भी देर से शुरू हुईं और वे एक ऐसे संदर्भ में शुरू हुईं जहां क्षेत्रीय, सामाजिक एवं जेंडर आधारित गैर-बराबरी बहुत ज्यादा थी, शिक्षा पर सरकारी खर्चा बहुत कम किया जाता था और स्कूली शिक्षा व्यवस्था, खासतौर से अध्यापकों की शिक्षा की संस्थागत क्षमता बहुत कम थी। अस्सी के दशक के आखिरी सालों से इस दिशा में जोर दिया जाने लगा और सबसे ज्यादा ध्यान इस बात पर दिया गया कि ग्रामीण इलाकों में ज्यादा से ज्यादा स्कूल खोले जाएं। इसके लिए भौतिक बुनियादी ढांचे और अध्यापकों के कैडर को अनियमित विस्तार देने का रास्ता अपनाया गया। शैक्षिक सुधार मुख्य रूप से जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) के जरिए शिक्षाशास्त्रीय पुनर्नवीकरण पर केंद्रित थे। इस कार्यक्रम को विश्व बैंक की आर्थिक सहायता से लागू किया गया था। नब्बे के दशक की शुरुआत में यही वह दौर था जब विश्व बैंक के साथ-साथ दूसरी डोनर संस्थाएं भी भारत के शिक्षा क्षेत्र में दाखिल होने लगी थीं। इस शिक्षाशास्त्रीय पुनर्नवीकरण कार्यक्रम का मुख्य फोकस इस बात पर था कि अध्यापकों को शैक्षिक कार्यक्रमों और हस्तक्षेपों में एक साझीदार बनाने की बजाय उन्हीं को सुधारा जाए। लिहाजा, इस कार्यक्रम के तहत आयी ज्यादातर फंडिंग को सेवारत स्कूली अध्यापकों के प्रशिक्षण पर खर्च किया गया जबकि सेवा-पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण को सिरे से नजरअंदाज कर दिया गया।

दाता संस्थाओं की प्राथमिकताओं व निर्देशों के अनुसार चलाए जा रहे इन राष्ट्रव्यापी शैक्षिक सुधारों से स्कूली शिक्षा में कई तरह के संरचनात्मक बदलाव आए। सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक संदर्भों से हटकर सबके लिए शिक्षा (एजुकेशन फॉर ऑल - ईएफए) के लक्ष्य तय किए गए। पहुंच व गुणवत्ता के बीच संतुलन को नजरअंदाज करते हुए नौकरशाही मशीनी ढंग से शैक्षिक लक्ष्यों की पूर्ति पर जोर देने लगी (बत्रा, 2012)। घरेलू स्रोतों और दाता संस्थाओं से आने वाले संसाधनों में इजाफे से केंद्र सरकार पर भी इस बात का दबाव पैदा हुआ कि वह शिक्षा में ज्यादा व्यापक भूमिका निभाए। इससे पहले तक केवल राज्य सरकारें ही संवैधानिक निर्देशों के अनुसार अपनी सीमित भूमिका को अंजाम दे रही थीं। प्रारंभिक शिक्षा के सार्विकीकरण (यूनिवर्सलाइजेशन ऑफ एलीमेंटरी एजुकेशन - यूईई) के काल में इन सुधारों को आगे बढ़ाने के लिए दाता संस्थाओं की पहल पर समानांतर संस्थागत संरचनाएं स्थापित की गईं जिनसे बहुत सारे सरकारी स्कूली शिक्षा संस्थान बाहर छूट गए।

सर्वशिक्षा अभियान (एसएसए), जोकि जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) की अगली कड़ी था, ने भारत सरकार के अब तक के सुधारों की दिशा को जारी रखा। धीरे-धीरे यह कार्यक्रम शिक्षा के संघीय ढांचे की सीमाओं पर भी दबाव डालने लगा क्योंकि शिक्षा भारतीय संविधान की समवर्ती सूची में आती है जिसमें अभिशासन, नीति निर्धारण और क्रियान्वयन की जिम्मेदारी मुख्य रूप से राज्य सरकारों के कंधे पर होती है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्राइवेट इंजीनियरिंग, मेडिकल और शिक्षक शिक्षा संस्थानों की स्थापना में तेजी से इजाफा हुआ और अब इन क्षेत्रों पर निजी क्षेत्र का ही दबदबा है। शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय ये संगठन धीरे-धीरे सामान्य शिक्षा में भी फैलते जा रहे हैं।

---

[6] Source: https://www.worldometers.info/world-population/india-population/

[7] Source: MoSPI (2019).

[8] Source: AISHE (2019).

[9] Source: MHRD (2018b).

[10] इन संख्याओं में वर्ष 2016-17 के दौरान केंद्र एवं राज्य सरकारों का संयुक्त हिस्सा शामिल है। उस साल स्कूली शिक्षा में केंद्र सरकार का हिस्सा मात्र 0.47 और उच्च एवं तकनीकी शिक्षा में 0.61 था। जीडीपी के प्रतिशत के रूप में शिक्षा पर केंद्र सरकार का कुल व्यय 2014-15 में 0.64 था जो 2019-20 में घट कर मात्र 0.45 रह गया था (सीबीजीए, 2019)।

भारत में उदारीकरण के बाद (1991 के बाद) लागू की गई शिक्षा नीति और व्यवहार पर दाता संस्थाओं के माध्यम से चलने वाले अंतर्राष्ट्रीय विमर्श का प्रभाव लगातार बढ़ा है और इस क्षेत्र में निजी संस्थानों का दखल भी बढ़ रहा है (बत्रा 2012; कुमार एवं अन्य 2001)। हाल ही में पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में लगातार चली वैचारिक प्रतिस्पर्धाओं से असमानता आधारित समाज में नई और कठिन चुनौतियां पैदा हो गई हैं। लिहाजा, एक प्रगतिशील स्कूली एवं शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या विमर्श (एनसीईआरटी, 2005; एनसीटीई, 2009) विकसित करने के बावजूद, और निशुल्क शिक्षा अधिकार कानून (आरटीई, भारत सरकार, 2009) पारित करने के बावजूद सरकारी स्कूल व्यवस्था अभी भी ज्यादातर बच्चों को स्तरीय शिक्षा प्रदान करने में सक्षम नहीं हो पाई है। जो बच्चे पढ़ रहे हैं उनकी लर्निंग का स्तर भी अपेक्षा के अनुसार नहीं है। दूसरी तरफ उच्च शिक्षा व्यवस्था लगातार परतबद्ध शक्ल लेती जा रही है और यह निजी संस्थानों के हितों के अनुसार संचालित हो रही है। समावेशन या गुणवत्ता सुनिश्चित करने में इन संस्थाओं की कोई खास दिलचस्पी नहीं है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

लगभग डेढ़ सौ साल तक सींची गई औपनिवेशिक संस्थागत संरचनाओं और मूल्यों से पैदा हुई भारत की स्वातंत्र्योत्तर शिक्षा व्यवस्था में एक ऐसी आधुनिकतावादी दृष्टि अपनाई गई जिसमें ज्ञान को प्रायः एक वस्तुनिष्ठ परिणाम के रूप में देखा जाता था। विकास की दिशा में बढ़ते हुए यह व्यवस्था 'वैज्ञानिक चिंतन' का गौरवगान करती थी, उत्पादकता और नतीजों पर जोर देती थी। औपनिवेशिक शिक्षा मुख्य रूप से अंग्रेजीभाषी देशी मध्यस्थों का एक नया वर्ग विकसित करने पर केंद्रित थी। यह व्यवस्था भारत के सामंती, पितृसत्तात्मक, जाति आधारित समाज के सामाजिक-धार्मिक और आर्थिक यथार्थ से कटी हुई थी। इस कटाव ने एक बड़ा शून्य पैदा किया, खासतौर से ऐसे लोगों के लिए जिनकी सोच आधुनिकतावादी, सार्वभौमिक औपनिवेशिक सोच के साथ मेल नहीं खाती थी।

इस अलगाव के चलते बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलनों के गर्भ से एक ताकतवर प्रतिवृत्तांत पैदा हुआ। यह वृत्तांत स्वतंत्र भारत में एक मुक्त जन व समाज की राष्ट्रीय कल्पना को शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानता था। इसे कई राष्ट्रवादी नेताओं का समर्थन और महत्वपूर्ण संस्थानों में आधार मिला।[११] शिक्षा के ज्ञान व व्यवहार की औपनिवेशिक दृष्टि के जवाब में सामने आए इन वृत्तांतों में काफी विविधता थी। एक तरफ ये वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्कशीलता से युक्त एकबद्ध जन समुदाय विकसित करने पर केंद्रित थे तो दूसरी तरफ आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आत्मनिर्भरता को शिक्षा का उद्देश्य मानते थे। शिक्षा का यह विज़न आधुनिकता के संकीर्ण व्यक्तिवादी और आर्थिक उद्देश्यों की आधारभूत आलोचनाओं पर आधारित था।

साम्राज्यवादी और आधुनिकतावादी दृष्टि के पीछे निहित बुनियादी मान्यताओं पर प्रश्न पर खड़ा करते हुए गांधीजी ने 'नई तालीम'[१२] के रूप में एक नया खाका पेश किया था। यह औपनिवेशिक शिक्षा की उस अभिजात्य व्यवस्था का जवाब था जिसे गांधीजी सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से अप्रासंगिक मानते थे। गांधीजी पाठ्चर्या को एक 'चिंतन' (डेलिबरेशन) की क्रिया मानते थे - एक ऐसी क्रिया जो औपनिवेशिक चिंतन के आधुनिकतावादी-सार्वभौमिकतावादी खाके में स्थापित 'ज्ञान की एक अंर्तनिहित दृष्टि' के स्थान पर औपनिवेशिक अधीनता से पीड़ित समाज की तात्कालिक जरूरतों व चिंताओं को संबोधित कर सके (बत्रा, 2015:39)।

---

[11] साल 1919 में आए मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के फलस्वरूप शिक्षा को निर्वाचित भारतीय मंत्रियों के नियंत्रण वाली प्रांतीय सरकारों के हाथों में सौंप दिया गया था। यह शिक्षा के क्षेत्र में प्रत्यक्ष औपनिवेशिक नियंत्रण की समाप्ति की शुरुआत थी। राष्ट्रवादी नेता इस बात को भली-भांति समझते थे कि उपनिवेशकारों ने दब्बू भारतीयों का समुदाय तैयार करने के लिए युवाओं के मस्तिष्क को नियंत्रित व निर्धारित करने हेतु शिक्षा का किस प्रकार इस्तेमाल किया था। लिहाजा, कई भारतीय नेताओं ने अपना जीवन ऐसे शिक्षा संस्थानों की स्थापना को समर्पित कर दिया जो नौजवानों को स्वतंत्रता संघर्ष से परिचित करा सकें और उसमें उनकी दीर्घकालिक सहभागिता सुनिश्चित कर सकें।

[12] गांधीजी के नई तालीम कार्यक्रम को 'बेसिक एजुकेशन' या 'वर्धा स्कीम' के नाम से भी जाना जाता है। नई तालीम बौद्धिक एवं शारीरिक, दोनों प्रकार के श्रम को बराबर सम्मान देने वाली शिक्षा का कार्यक्रम था।

शिक्षा के क्षेत्र में टैगार का विज़न शांति निकेतन[१३] से शुरू हुआ और पला-बढ़ा। शांति निकेतन में प्रकृति ही सर्वोपरि शिक्षक की भूमिका अदा करती थी। बच्चे अपने अध्यापकों के साथ गहरा लगाव रखते थे और मुक्त वातावरण में शिक्षा ग्रहण करते थे। आधुनिकता को अपने ढंग से अपनाते हुए टैगोर ने विज्ञान को जनता के बीच लोकप्रिय बनाने के लिए एक आंदोलन[१४] का भी सूत्रपात किया। श्री ऑरबिंदो की समेकित शिक्षा (इंटिग्रल एजुकेशन)[१५] युवाओं को "मानव जीवन के सच्चे उद्देश्य" की ओर प्रेरित करने का एक साधन थी। यह उद्देश्य "व्यक्तिगत भी था और सामूहिक भी", क्योंकि उनका मानना था कि "व्यक्ति केवल अपने आप में विद्यमान नहीं होता बल्कि समुच्चय में ही विद्यमान होता है... अपनी मुक्ति के स्वच्छंद प्रयोग में ही अन्य मनुष्यों और मानव जाति की मुक्ति भी निहित है" (2002:14)।

इसके बावजूद, बहुत सारे राष्ट्रवादी नेताओं ने परंपरा बनाम आधुनिकता, मनोगत बनाम वस्तुनिष्ठ जैसे विलोमों पर खड़े औपनिवेशिक ज्ञान के आनुभविक आधारों पर सवाल खड़ा नहीं किया जबकि यही औपनिवेशिक शिक्षा आधुनिकता तथा उस शहरी अभिजात्य वर्ग के साथ गहरे तौर पर जुड़ी हुई थी जो आगे चलकर नवस्वाधीन राज्य की बागडोर संभालने वाला था।

शिक्षा में समानता जैसे गहरे प्रश्न ऐसे आंदोलनों से पैदा हुए थे जो भारत की आजादी के उपनिवेशवाद विरोधी संघर्षों के पहले से चले आ रहे थे। ये आंदोलन जाति विरोधी विमर्श और नाना प्रकार की बेदखली के विरोध पर आधारित थे। इनमें से कुछ संघर्ष[16] जोतिबा फुले (1827-1890); सावित्रीबाई फुले (1831-1897); ताराबाई शिंदे (1850-1910) और पंडिता रमाबाई (1858-1922) जैसे लोगों द्वारा पेश किए गए नारीवादी और जाति-विरोधी लेखन, एक्टिविज्म और विमर्श में प्रतिबिंबित होते थे।[१६]

राष्ट्रवादी नेताओं के नेतृत्व में चला आजादी का राजनीतिक संघर्ष औपनिवेशिक शासन को चुनौती देने के लिए तर्कशीलता और आधुनिकता के विचारों का सहारा तो लेता था मगर आश्चर्य की बात है कि उसने ब्राह्मणवादी वर्चस्व[१७] और पितृसत्ता को चुनौती देने को एक ज्ञानशास्त्रीय कड़ी के रूप में नहीं देखा जबकि भारतीय राज्य की स्थापना व रचना की बहसों में ये भी बहुत महत्वपूर्ण शक्तियां थीं (बत्रा, 2020ए)। इसका नतीजा ये हुआ कि औपनिवेशिक राज्य ने ज्ञान के ब्राह्मणवादी नियंत्रण को पुष्ट करने वाली जो नीतियां अपनायीं (रेगे, 2010; सिन्हा, 2017) उनका भारत में बहुत कम प्रतिरोध हुआ और परंपरा बनाम आधुनिकता का विलोम आजादी के बाद के विमर्श और राजनय में भी सहज जारी रहा।

भारत में ज्ञान के संदर्भरहित सार्वभौमिक खाके का गौरवगान करने वाली 'शिक्षा की आधुनिक व्यवस्था' सामाजिक ऊंच-नीच और सत्ता असमानता पर आधारित समाज में फल-फूल रही थी। उत्तर औपनिवेशिक काल में कई बार प्रयास किया गया कि शिक्षा को लोगों और उनकी संस्कृति के नजदीक लाया जाए। इसके लिए भाषा का सहारा लिया गया और सामाजिक व मनोवैज्ञानिक पहुंच को विस्तार देने पर भी ध्यान दिया गया मगर इन चेष्टाओं को व्यवस्था के धरातल पर ज्यादा जगह नहीं मिल पाई (बत्रा, 2020ए)। इसके साथ-साथ आनुभविक ज्ञान में निहित विविधता की भी उपेक्षा की गई जिसके कारण संरचनात्मक असमानताओं के प्रश्नों के साथ एक गंभीर जुड़ाव नहीं बन सका। ये ऐसी असमानताएं थीं जिनके खिलाफ अंबेडकर[१८] (1891-1956) आजीवन संघर्ष करते रहे और जिन्हें औपनिवेशिक शिक्षा ने और मजबूती से स्थापित कर दिया था।

---

[13] बंगाल में, कलकत्ता से 158 किलोमीटर उत्तर-पश्चिम में स्थित ग्रामीण इलाके में सक्रिय शांति निकेतन में रवींद्रनाथ टैगोर की धार्मिक एवं क्षेत्रीय सीमाओं से मुक्त शिक्षा का विजन प्रतिबिंबित होता है। साल 1863 में स्थापित शांति निकेतन का उद्देश्य एक ऐसी शिक्षा प्रदान करना था जो कक्षा की सीमाओं से दूर तक फैली हो। 1921 में शांति निकेतन को विश्व भारती विश्वविद्यालय का नया नाम दिया गया और देश के कुछ बेहद रचनाशील विद्वान इसकी तरफ आकर्षित हुए। टैगोर ने शांति निकेतन की स्थापना मानववाद, अंतर्राष्ट्रीयवाद और एक टिकाऊ वातावरण की रचना के सिद्धांतों पर की थी। टैगोर ने शांति निकेतन के लिए एक ऐसा कार्यक्रम तैयार किया जिसमें कला, मानवीय मूल्यों और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का अनूठा संगम था।

[14] टैगोर ने *लोक शिक्षा* के अपने विचारों के माध्यम से विज्ञान के प्रचार-प्रसार में भी योगदान दिया।

[15] इंटीग्रल एजुकेशन (समेकित शिक्षा) "एक ऐसे गहन सद्‌भाव और शांति की ओर केंद्रित होती है जो मानव मस्तिष्क की सीमाओं से परे जाकर परिलक्षित होता है क्योंकि यह मस्तिष्क मूल रूप से प्रथक्ककारी होता है और व्यक्ति अथवा समाज, दोनों के भीतर सद्‌भाव का आधार नहीं बन सकता।" समेकित शिक्षा की पाठ्‌यचर्या श्री ऑरबिंदो द्वारा पेश किए गए तीन बुनियादी सिद्धांतों से प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने कहा था कि 'कुछ भी पढ़ाया नहीं जा सकता', 'मस्तिष्क के विकास में उसका परामर्श आवश्यक है'; तथा 'निकट से दूर की ओर, जो है से जो होना है की दिशा में' शिक्षा दी जानी चाहिए (देखें गुप्ता, 2014)।

[16] उस समय भारतीय उपमहाद्वीप में कई आंदोलन थे जिनमें जातिवादी तौर-तरीकों का विरोध करने के लिए आधुनिकता का सहारा लिया जाता था। यह प्रवृत्ति उन समुदायों में खासतौर से मुखर दिखाई दी जहां शिक्षा को ब्राह्मणवादी वर्चस्व से मुक्ति के साधन के रूप में देखा जा रहा था। अंबेडकर का सामाजिक व राजनीतिक चिंतन भी ऐसे ही विचारों के आलोक में विकसित हुआ और आगे चलकर दलित महिला संघर्ष की आधारशिला बना।

[17] इस शब्द का मतलब है पिछड़ी, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों पर ऊंची जातियों का प्रभुत्व।

[18] बी. आर. अंबेडकर स्वतंत्र भारत के पहले विधि एवं न्याय मंत्री थे। उन्हें भारत के संविधान का मुख्य शिल्पी और भारतीय गणराज्य के संस्थापकों में से एक गिना जाता है। उन्होंने कोलंबिया युनिवर्सिटी और युनिवर्सिटी ऑफ लंदन से अर्थशास्त्र में दो डॉक्टरेट की उपाधियां हासिल की थी जिससे कानून, अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में उन्हें व्यापक ख्याति मिली। वह लोक शिक्षा में गहरे तौर पर सक्रिय थे। उन्होंने पत्र-पत्रिकाएं निकाली, दलितों के राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों के हक में आवाज उठाई और भारत की स्वतंत्रता तथा भारतीय राज्य की स्थापना में उल्लेखनीय योगदान दिया।

ये सब कुछ भारतीय सरकारी शिक्षा में सकारात्मक चेष्टाओं की दो लहरों के बावजूद हुआ। इसमें पहली लहर संविधान निर्माण की प्रक्रिया के दौरान सामने आई जब 1950 में पिछड़ी जातियों और जनजातीय समूहों (अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों) को शिक्षा में और सरकारी शिक्षकों के पदों में आरक्षण दिया गया। दूसरी चेष्टा 1990 में तब सामने आई जब इस लाभ का दायरा फैलाते हुए अन्य पिछड़े वर्गों (ओबीसी) को भी 50 प्रतिशत आरक्षण के दायरे में शामिल किया गया (सर्वोच्च न्यायालय ने तय कर दिया था कि आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होगा)। मगर, इन कोशिशों को लेकर पिछले 70 साल से भी अधिक समय से राजनीतिक, वैचारिक और आर्थिक संघर्ष व प्रतिद्वंद्विता लगातार चली आ रही है। कानून और राजनीति के धरातल पर एक वितरणकारी सामाजिक न्याय की रूपरेखा और एक समावेशी विकास की धारणा के बीच यह खींचतान आज भी जारी है।

इसका एक सबूत इस तथ्य में देखा जा सकता है कि स्कूली अध्यापकों की शिक्षा के लिए चली आ रही पाठ्यचर्या - जोकि औपनिवेशिक सोच में गहरी डूबी हुई थी - को अंग्रेजों के जाने के बाद भी, इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक यानी 65 साल से भी अधिक समय तक छेड़ने की जरूरत महसूस नहीं की गई।[१९] जब उत्तर औपनिवेशिक भारत में शैक्षिक व्यवहारों के अनौपनिवेशीकरण[२०] की कोशिशें की गईं तो उनका भी आधुनिक स्कूली शिक्षा व्यवस्था की औपनिवेशिक जड़ों ने नीतिगत स्तर पर एक-दूसरे से अलग रखे गये उच्च शिक्षा केंद्रों के माध्यम से गहरा प्रतिरोध किया।

समकालीन चुनौतियां

समकालीन भारत का अधिकांश शैक्षिक विमर्श एवं व्यवहार औपनिवेशिक जड़ों से गहरे तौर पर प्रभावित है हालांकि नब्बे के दशक की शुरुआत में लागू किए गए नवउदारवादी सुधारों के तीन दशकों के अनुभवों से इनकी रूपरेखा में कुछ बदलाव आए हैं। इन सुधारों को प्रेरित करने वाली अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा परियोजना[२१] के बहुत सारे तत्व आधुनिकता व विकास के उन्हीं विचारों और धारणाओं पर आश्रित हैं जो औपनिवेशिकता में निहित थीं (बत्रा, 2020ए)। इन सुधारों ने न केवल संस्थागत संरचनाओं को बदला है बल्कि उत्तर-औपनिवेशिक भारतीय शिक्षा नीति व व्यवहार को भी हाशिए पर धकेलने की कोशिश की है। अभाव के इसी अहसास से इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में 'वैश्विक ज्ञान समुदाय' से 'कर्जों' की विस्तृत नीति और 'विश्वस्तरीय' मानकों वाली स्कूली व उच्च शिक्षा के 'अंतर्राष्ट्रीयकरण' की प्रक्रियाओं का जन्म हुआ। इसके फलस्वरूप अनौपनिवेशीकरण की विविध प्रक्रियाएं अस्त-व्यस्त हुई हैं और सुधार नीति हस्तांतरण के माध्यम से एक सबॉल्टर्न ज्ञान की रचना हुई है। यह ज्ञान एक संदर्भरहित अमूर्तन से पैदा हुआ है और इसे औचित्य व गति प्रदान करने के लिए लक्ष्योन्मुखी सार्वभौमिक एजेंडा का सहारा लिया जाता रहा है (बत्रा, 2020ए)। मानव पूंजी की विचारधारा पर आधारित शिक्षा का यह नवउदारवादी एजेंडा संकुचित आर्थिक स्तर पर व्यक्तिगत लक्ष्यों और निजी स्वार्थों की पूर्ति पर केंद्रित है। इससे समाज की जरूरतों और नीति निर्धारण के बीच एक फासला पैदा हुआ है। पिनार (2015:223) के अनुसार नवउदारवादी सुधारों में एक ऐसे नवउपनिवेशवाद के दर्शन होते हैं जो "सांस्कृतिक निर्भरता और राजनीतिक अधीनता को, और अधिकारों व क्षतिपूर्ति जैसे शब्दों की आड़ में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन देता है।" मानव पूंजी विचारधारा में निहित भारतीय शिक्षा व्यवस्था लगातार इस सोच के सहारे आगे बढ़ रही है कि नौकरी पाने की योग्यता और आर्थिक उन्नति ही स्कूली व उच्च शिक्षा के केंद्रीय उद्देश्य हैं। इसने समानता, न्याय व भाईचारे के संवैधानिक मूल्यों और क्रमशः सक्रिय नागरिकता के लक्ष्य को भी हाशिए पर धकेल दिया है।

उदारीकरण के आरंभिक सालों से जो शैक्षिक सुधार शुरू किए गए थे उनसे स्कूली शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा के व्यवहार और उपलब्धता में व्यवस्थागत बदलाव आए हैं। न्यायिक हस्तक्षेपों[२२] के बावजूद राज्य ने अध्यापकों को तैयार करने की संस्थागत क्षमता विकसित करने की जिम्मेदारी से लगातार अपने हाथ पीछे खींचे हैं जिसके फलस्वरूप एक ऐसी नीति सामने आई है जो समतापरक, स्तरीय शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने में अध्यापकों की संभावित भूमिका और उनकी शिक्षा के महत्व, दोनों को कमजोर करती है। गुणवत्ता व ज्ञान के इर्द-गिर्द केंद्रित नीतिगत वृत्तांतों ने अध्यापक को हाशिए पर धकेलने, उसकी क्षमताओं

---

[19] बैचलर ऑफ एजुकेशन (बीएड) डिग्री वास्तव में औपनिवेशिक शासन के दौरान अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए शुरू किए गए 'नार्मल स्कूल्स' की विरासत की ही अगली कड़ी है। इस डिग्री की रूपरेखा पर पहली बार 2015 में संशोधन किया गया और इसे एक-वर्षीय कार्यक्रम से दो-वर्षीय कार्यक्रम में तब्दील किया गया। इसमें अनौपनिवेशिक ज्ञान धाराओं से उपजे कई महत्वपूर्ण विचारों का समावेश किया गया। यह नई रूपरेखा राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षा पाठ्यचर्या (एनसीटीई, 2009) पर आधारित थी।

[20] इस प्रसंग में भारत में हुए समाज वैज्ञानिक शोधों ने एक अहम योगदान दिया है।

[21] यहां 'अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा परियोजना' को एक व्यापक पद के रूप में प्रयोग किया जा रहा है जो बहुत सारे अंतर्राष्ट्रीय शोध संस्थानों व पक्षों, वैश्विक नेटवर्कों और परियोजनाओं की ओर इंगित करता है। इनमें ईएसए जैसी द्विपक्षीय संस्थाएं भी हैं जो अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा समुदायों से जुड़ी हैं और ऐसे वैश्विक ज्ञान समुदाय भी हैं जिनका स्टीफन बॉल ने जिक्र किया है (बॉल 2012)।

[22] न्यायमूर्ति वर्मा आयोग (जेवीसी) का गठन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2011 में किया गया था। इस आयोग को शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त समस्याओं, नीति संबंधी विकृतियों और नियमन संबंधी टकरावों की जांच करने का जिम्मा सौंपा गया था।

को क्षीण करने और ज्ञान सृजन में उसकी सक्रिय हिस्सेदारी को अप्रासंगिक बनाने का तर्क पैदा किया है। इसके चलते संविधान-केंद्रित नीतियों के प्रति प्रतिबद्धता के स्थान पर एक ऐसी राजनीति विकसित हुई है जो शिक्षा के निजीकरण के प्रति प्रतिबद्ध है। इसने एक ऐसी नौकरशाही को भी बल दिया है जो सबको स्तरीय शिक्षा प्रदान करने के रास्ते में आने वाली नाना चुनौतियों से जूझने की बजाय केवल डिग्रीधारी शिक्षितों की संख्या बढ़ाने और अधकचरे समाधानों के प्रति प्रतिबद्ध है (बत्रा, शीघ्र प्रकाश्य)।

जब हम नई सदी में नवउदारवादी सुधारों के दूसरे दशक में दाखिल हुए तो शिक्षकों के सामने चुनौती ये थी कि पाठ्यचर्यात्मक ज्ञान को एक बार फिर सामाजिक न्याय व समता की ओर उन्मुख संविधान-केंद्रित दृष्टि के रूप में पुनर्स्थापित करें। यह अवसर तब सामने आया जब राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीईआरटी, 2005) तैयार की गई और कुछ समय बाद राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या (एनसीटीई, 2009) पारित की गई। इन दस्तावेजों ने पाठ्यचर्या में ज्ञान को एक बार फिर संदर्भ से जोड़ने की जरूरत को स्थापित किया। उसी समय शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा देने वाला केंद्रीय कानून (भारत सरकार, 2009) भी पारित किया गया। मगर, नई सरकार के नेतृत्व में पिछले कुछ सालों के दौरान आई नवउदारवादी नीतियों के जरिए एक बार फिर पढ़ाने और सीखने की प्रक्रियाएं समता व सामाजिक न्याय की पाठ्यचर्यात्मक चिंताओं से दूर जाने लगी हैं।

अध्यापकों, उनकी शिक्षा और उनके व्यवहार पर केंद्रित अंतर्राष्ट्रीय विमर्श के फलस्वरूप फिलहाल पाठ्यचर्या को लर्निंग आउटकम्स के एक बेतरतीब समूह के रूप में देखा जाने लगा है और सीखने का जिम्मा बच्चों के कंधों पर धकेल दिया गया है (बत्रा, शीघ्र प्रकाश्य)। लिहाजा, आरटीई कानून की सख्त संस्थागत निगरानी के अभाव और सरकारी व्यय व अध्यापकों की कमी के चलते यह कानून भी नवउदारवादी सुधारों का शिकार हो चुका है और इसके दायरे में निरंतर कटौतियां होती जा रही हैं।

शिक्षा व्यवहार जैसे-जैसे संकुचित आर्थिक हितों को महत्वपूर्ण सार्वजनिक व सामाजिक चिंताओं के ऊपर प्राथमिकता देता जा रहा है, वैसे-वैसे शिक्षा के संवैधानिक लक्ष्य और बाजार आधारित सुधारों का फासला भी गहरा होता जा रहा है। इस घटनाक्रम के चलते शिक्षा के क्षेत्र में वंचित और बहुलवादी समाज की जरूरतों के लिए संविधान-केंद्रित नीतिगत प्रस्तावों का महत्व क्षीण होता चला गया है। इसका एक महत्वपूर्ण दुष्परिणाम ये हुआ है कि सामाजिक न्याय की चिंताएं स्तरीय शिक्षा की चिंताओं से अलग हो गई हैं। सामाजिक रूपांतरण लाने के लिए कक्षा में पाठ्यचर्या, भाषा एवं सामाजिक विविधता के प्रश्न, लर्निंग को सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ से जोड़ने और अध्यापकों की पेशेवर क्षमता व संभावनाओं को विकसित करने जैसे सवाल अब शिक्षा नीति विमर्श[२३] में केंद्रीय महत्व नहीं रखते (बत्रा, 2020बी)।

यह बात कोविड-19 महामारी पर सरकार की प्रतिक्रिया में भी साफ दिखाई देती है। जब हमारे यहां संक्रमण फैलना शुरू हुआ तो देश भर के शिक्षा संस्थानों को छह माह से भी ज्यादा समय तक बंद रखा गया। सरकार ऑनलाईन अध्यापन व परीक्षाओं को वरीयता देने के लिए हर संभव कदम उठा रही है जबकि हमारे देश में तकनीक का प्रसार आज भी गहरी आर्थिक व सामाजिक असमानताओं से तय होता है और डिजिटल पाठ्यचर्या सामग्री की उपलब्धता ज्यादातर बच्चों के लिए एक समस्या है (बत्रा, 2020सी)।

स्कूली शिक्षा

आजादी के बाद शुरुआती सालों में न्याय, मुक्ति, समानता और भाईचारे की संवैधानिक रूपरेखा के तहत एक मजबूत सरकारी स्कूल व्यवस्था विकसित करने पर खासतौर से जोर दिया गया (भारत सरकार, 1966)। भारत की पहली शिक्षा नीति को पढ़कर पता चलता है कि ये कोशिश भी समाज के व्यापक तबके को शिक्षा के दायरे में लाने में कामयाब नहीं हो पाई है

---

[23] इसका आशय राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 से है।

(भारत सरकार, 1968)। नाईक (1975) ने समानता, मुक्ति, न्याय और मानव प्रतिष्ठा के संवैधानिक लक्ष्यों एवं सदियों से चली आ रही ऊंच-नीच और भारतीय परंपरा में निहित चुनौतियों के बारे में बात की है। ये वो दौर था जब लोक शिक्षा मुख्य रूप से राज्य सरकारों की देखरेख में चलती थी और केंद्र सरकार मुख्य रूप से संसाधन मुहैया कराती थी और यदा-कदा राष्ट्रीय समन्वय (जैसे भाषा का प्रश्न) और गुणवत्ता जैसे जटिल मसलों पर कुछ मदद देती थी। उस वक्त बहुपक्षीय या अंतर्राष्ट्रीय दाता संस्थाओं की उपस्थिति शून्य या नगण्य थी।

समतापरक शिक्षा के सवाल पर संरचनात्मक समझौतों की शुरुआत (भारत सरकार, 1986) नीतिगत बदलावों के साथ उस समय हुई जब हाशियाई तबकों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने के कथित उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए गैर-औपचारिक शिक्षा केंद्रों को मान्यता दी जाने लगी (वेलासकर 2010)। दूर-दराज के ग्रामीण इलाकों में नवोदय विद्यालय जैसे आदर्श स्कूलों की स्थापना की गई और इस तरह 'सबको स्तरीय शिक्षा तक पहुंच' के मुकाबले 'कुछ को स्तरीय शिक्षा' दी जाने लगी (नाम्बिसन एवं बत्रा, 1989; कुमार, 2010)। यह नीतिगत बदलाव शैक्षिक असमानताओं को छिपाने के साथ-साथ उनको जारी रखने का भी एक संकेत था।

जैसा कि पीछे जिक्र किया गया था, हमारे यहां सार्वभौमिक शिक्षा की दिशा में बढ़ने की सुनियोजित कोशिशें बीसवीं शताब्दी के आखिरी दशक में जाकर शुरू हुईं। नब्बे के दशक के शुरुआती सालों में जोमतिन सम्मेलन[२४] के बाद व्यापक शैक्षिक सुधारों का सिलसिला शुरू किया गया। उस वक्त देश में साक्षरता दर 52% थी और इसमें जेंडर असमानता 20% से भी अधिक थी। आज हमारी साक्षरता दर 75% के औसत पर पहुंच गई है मगर जेंडर असमानता अभी भी 18% के आसपास बनी हुई है (जनगणना, 2011)। जोमतिन सम्मेलन के बाद शुरू किए गए शिक्षा सुधार आर्थिक उदारीकरण व सुधारों की पहली लहर (1984-1990) और दूसरी लहर (1991-2014) के समानांतर लागू किए गए।

सुधारों के पहले दशक से ही स्कूली दाखिलों में इजाफा तो हुआ मगर सरकारी स्कूल व्यवस्था में आधी-अधूरी शिक्षा से लैस 'पैरा-टीचर्स' की भरमार हो गई और नतीजा ये हुआ कि बच्चों के सीखने की गति और स्तरों में कोई खास सुधार नहीं आ पाया। इसकी वजह से गली-मोहल्लों में निजी स्कूलों की बाढ़ आ गई। इन्हें वैश्विक नीतिगत पैरोकारों और नवउदारवादी विमर्श व उपायों से भी बढ़ावा मिला। अध्यापकों के शिक्षण-प्रशिक्षण की संस्थागत क्षमता सुधारों के दूसरे दशक में यानी वर्तमान शताब्दी के पहले दशक में भी उपेक्षित थी जिसकी वजह से अध्यापकों की बौद्धिक क्षमता व पहल लगातार कुंद होती जा रही थी। इसकी वजह से शिक्षक शिक्षा के गैर-व्यावसायिक क्षेत्र में भी बाजार की घुसपैठ तेज होती गई जिसके बारे में सर्वोच्च न्यायालय ने भी समय-समय पर अपनी चिंता व्यक्त की है।

मानव विकास और सामाजिक न्याय की उपेक्षा करने वाले कमजोर राजकोषीय एवं नीतिगत वातावरण में चले शैक्षिक सुधारों के दो दशकों के अनुभवों से ये नतीजे सामने आए हैं : शिक्षा में राज्य का निवेश सीमित है; जो निवेश किया जा रहा है उसका जोर मुख्य रूप से बुनियादी ढांचा तैयार करने पर है; सरकारी स्कूलों में, खासतौर से शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों के सरकारी स्कूलों में अध्यापकों की संख्या में जरूरत के हिसाब से इजाफा नहीं हो रहा है; अध्यापकों को पेशेवर सहायता नहीं मिलती; अध्यापकों की एजेंसी यानी उनकी सोचने-फैसले लेने की क्षमता कुंद हुई है; पाठ्यचर्या को सीखने संबंधी अलग-अलग लक्ष्यों का समूह बनाकर रख दिया गया है; अध्यापन को निम्नस्तरीय चिंतन व कौशल का विषय बना दिया गया है; और व्यवहार के धरातल पर एक ऐसी नीति हावी होती जा रही है जो समतापरक और स्तरीय शिक्षा का लक्ष्य हासिल करने के लिए अध्यापक की संभावित भूमिका को कमजोर करती है।

यथास्थिति से दशकों तक चिपके रहने के बाद अचानक[२५] 2009 में प्रारंभिक शिक्षा को एक मौलिक अधिकार घोषित कर दिया गया। यह कदम एक ऐसे समय पर उठाया गया था जब सरकारी स्कूल व्यवस्था चरमरा रही थी। इन स्कूलों को आम मानस में बेकार मान लिया गया था, इनमें अध्यापकों की भारी कमी थी और अल्पशिक्षित शिक्षकों की भीड़ जमा थी। इन हालात की वजह से सरकारी स्कूलों में दाखिले गिरने लगे थे जबकि किसी भी तरह के कायदे-कानूनों से आजाद निजी स्कूल देश के गली-मोहल्लों में दिन-दुनी रात-चौगुनी तरक्की कर रहे थे। सबसे पिछड़े राज्यों में कम फीस वाले निजी स्कूलों की तादाद में बेहिसाब इजाफा हुआ। ये ऐसे राज्य थे जहां बच्चों का शैक्षिक स्तर स्कूलों में दाखिले के बाद भी कमजोर था, अध्यापकों की भारी कमी थी और अध्यापकों को प्रशिक्षण देने के लिए संस्थागत क्षमता बहुत सीमित थी।

इंजीनियरिंग और मेडिकल उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मिले सफल अनुभवों के आधार पर आगे बढ़ते हुए बहुत सारे निजी संस्थानों ने पेशेवर प्रशिक्षणयुक्त अध्यापकों की कमी को पूरा करने के लिए 'टीचिंग शॉप्स' खोलना शुरू किया। शिक्षक-शिक्षा का तेजी

---

[24] दि वर्ल्ड कॉन्फ्रेंस ऑन एजुकेशन फॉर ऑल (सबको शिक्षा सम्मेलन) का आयोजन मार्च 1990 में ज्योमतिन, थाईलैंड में किया गया था।

[25] भारत में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की मांग पहली बार गोपाल कृष्ण गोखले ने इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल में एक निजी सदस्य द्वारा प्रस्तुत विधेयक के जरिए 1911 में उठाई थी।

से व्यावसायीकरण होने लगा जिसके चलते इस पर निजी क्षेत्र का कब्जा होता चला गया। उच्च शिक्षा एवं स्कूली शिक्षा नीतियों के बीच मौजूद खाई की वजह से इसे और बढ़ावा मिला। 2010 के दशक तक आते-आते 80% बच्चे सरकारी स्कूलों में जाने लगे थे।[२६] मगर उनके अध्यापक एक ऐसी शिक्षक शिक्षा व्यवस्था से आ रहे थे जिसमें 90% से अधिक शिक्षक शिक्षा संस्थान निजी स्वामित्व और नियंत्रण वाले थे (भारत सरकार, 2012)। इस विसंगति और शिक्षा अधिकार कानून में एक के बाद एक किए गए कई सुधारों के फलस्वरूप राज्य द्वारा इस विषय में अपनी जिम्मेदारियों से हाथ खींच लेने के चलते कुछ ही सालों के भीतर सरकारी स्कूलों के दाखिलों में फिर गिरावट आने लगी। इसका नतीजा ये हुआ कि सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या 65% तक गिर गई थी।[२७] एक बार फिर मां-बाप अच्छी शिक्षा की उम्मीद में निजी स्कूलों की शरण में जाने लगे। फिलहाल भारत को दक्षिण एशिया के उन चार देशों में शुमार किया जाता है जहां 6-18 साल के लगभग एक तिहाई बच्चे निजी स्कूलों में पढ़ते हैं (विश्व बैंक, 2017); और कई राज्यों में बच्चों के लर्निंग स्तर में सुधार नहीं आ पा रहा है (असर, 2019)। यह कोविड-19 महामारी के दौरान पैदा हुए गंभीर शैक्षिक संकट के कारणों में से एक है क्योंकि बहुत सारे निजी स्कूलों के सामने दिवालियेपन और फलस्वरूप बंद हो जाने की स्थिति पैदा हो गई है क्योंकि करोड़ों लोगों की आजीविका जा चुकी है और वे मामूली फीस देने की स्थिति में भी नहीं हैं। इस आर्थिक विवशता के कारण कुछ राज्यों में बच्चे फिर से सरकारी स्कूलों में लौटने लगे हैं। इसे सरकारी स्कूल व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए एक अवसर के रूप में देखा जाना चाहिए। दूसरी तरफ, निजी लॉबिंग में लगे लोग इसके लिए भी आवाज उठा रहे हैं कि संकट में फंसे इन निजी स्कूलों को सरकार लघु एवं मध्यम उद्यम (माइक्रो, स्मॉल ऐण्ड मीडियम एंटरप्राइजेज) के रूप में आर्थिक सहायता देकर पुनर्जीवित करे (सीएसएफ, 2020)।

स्कूली शिक्षा में व्यवस्थागत सुधार की कई कोशिशें की गई हैं जो ज्यादातर राज्यों में सार्वभौमिक स्तरीय शिक्षा को संस्थागत रूप देने और बढ़ते लर्निंग संकट को दूर करने में प्रायः नाकाम साबित हुई हैं। स्कूली शिक्षा में बहुत कम सरकारी निवेश की वजह से स्तरीय शिक्षा मुहैया कराने लिए संस्थागत क्षमता और संभावना बहुत कम रह जाती है।

भारत के विविधतापूर्ण कक्षा वातावरण की जटिलताओं और इस विविधता को संबोधित करने की अध्यापकों की तैयारी को नजरअंदाज करने की वजह से शिक्षा नीति केवल व्यवहारिक पहलू पर ध्यान केंद्रित करती दिखाई देती है - यानी, गुणवत्ता को परिणामों के आधार पर नापने का तरीका अपना लिया गया है। इसी के चलते इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में सुनियोजित ढंग से इस तरह का नीतिगत विमर्श तैयार किया गया कि लर्निंग असेसमेंट पर तो जोर दिया जाए मगर बच्चों के लिए सार्थक लर्निंग अनुभवों की ज्यादा परवाह न की जाए। इसकी वजह से 'लर्निंग' यानी सीखने का विचार 'शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रियाओं' और 'शिक्षकों की पेशेवर निर्णय क्षमता' से कटता चला गया है (बत्रा, शीघ्र प्रकाश्य)। सीखने के संकट पर चल रहे समकालीन विमर्श में वर्ग, जाति, नस्ल, नृजातीयता, जेंडर और विकलांगता जैसी अलग-अलग असमानताओं से प्रभावित तबकों के विद्यार्थियों के लर्निंग आउटकम्स पर पड़ने वाले प्रभावों को नजरअंदाज कर दिया जाता है (टिकली, एवं अन्य 2020)।

लर्निंग आउटकम्स पर इस एकांगी फोकस से कई सरकारी स्कूलों में सीखने का माहौल ठहरावग्रस्त है। मसलन, अंग्रेजी मीडियम के अलग सेक्शनों का प्रचलन। तरह-तरह के निजी स्कूलों के आने से और खुद सरकारी स्कूलों के भीतर भी शैक्षिक असमानता में इजाफा हुआ है। इसकी वजह से मौजूदा सामाजिक, आर्थिक, जेंडर एवं क्षेत्रीय असमानताओं को भी बहुत बढ़ावा मिला है। अगर ऐसा ही चलता रहा तो 36.5 करोड़ नौजवानों (15-30 वर्ष आयु समूह, संयुक्त राष्ट्र, 2019) के दम पर भारत जिस जनसांख्यिकीय लाभ की उम्मीद कर रहा है वह एक दिवास्वप्न में भी तब्दील हो सकता है (रेड्डी, 2006)।

बहुत सारे सरकारी स्कूलों का आपस में विलय कर दिया गया है, बहुत सारे स्कूलों को बंद कर दिया गया है। इसके लिए तर्क दिया गया है कि ये स्कूल आर्थिक रूप से उपयोगी नहीं हैं और स्तरीय शिक्षा नहीं दे पा रहे हैं। नीति आयोग के मुताबिक, अकेले 2018 में मध्य प्रदेश, ओडिशा और झारखंड[२८] में ही लगभग 40,000 स्कूलों का विलय किया गया था। इससे समाज के सबसे वंचित तबकों और दूर-दराज के इलाकों में रहने वाली लड़कियों की शिक्षा पर एकदम सीधा फर्क पड़ेगा। इससे प्रारंभिक शिक्षा हासिल करने के उनके मौलिक अधिकार पर खतरा पैदा हो चुका है। शिक्षा अधिकार कानून में महत्वपूर्ण बदलाव किए गए हैं। 'नो डिटेंशन नीति' को खत्म कर दिया गया है और 'शिक्षा के अधिकार' को 'सीखने के अधिकार' में तब्दील कर दिया गया है। ऐसे बदलाव समाज के सबसे संवेदनशील तबकों के लिए केवल न्यूनतम शिक्षा को एक संस्थागत मान्यता देने पर केंद्रित हैं जिससे इस बात की आशंका पैदा होती है कि उन्हें एक बार फिर शिक्षा के दायरों से बाहर फेंक दिया जाएगा।

---

[26] यह संख्या सरकारी स्कूलों में घटते दाखिलों के फलस्वरूप अब काफी कम हो चुकी है।

[27] Unified District Information System for Education (UDISE, 2018). Source: http://udiseplus.gov.in/mainhome#.

[28] नीति आयोग संदर्भ।

‘शिक्षा के अधिकार’ - जो कि मौलिक अधिकार है - के स्थान पर ‘सीखने के अधिकार’ पर जोर देने से इस अधिकार के वृहत्तर संदर्भ, उद्देश्य, स्वरूप और लक्ष्यों पर खतरा पैदा हो गया है। संभव है कि टिकाऊ विकास के चालक बल के रूप में शिक्षा की भूमिका को भी खारिज कर दिया जाए। इस अवधारणात्मक बदलाव का नतीजा ये है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी, भारत सरकार, 2020) में प्रस्ताव रखा गया है कि स्तरीय शिक्षा की न्यूनतम परिभाषा के आधार पर एक केंद्रीय कानून बनाया जाए। इस नीति में आरटीई कानून को “उल्लेखनीय रूप से कम बंधनकारी” बनाने पर भी जोर दिया गया है। इसके लिए नियमों को ढीला किया जाएगा जिससे वैचारिक रुझान वाले और मुनाफाखोर संस्थानों के माध्यम से प्रारंभिक शिक्षा बड़े पैमाने पर मुहैया कराने का रास्ता खुल जाएगा। इससे शिक्षा के मौलिक अधिकार की दिशा में भारत का अब तक का सफर निरर्थक हो जाएगा।

देश भर में एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था पैदा हुई है जिसमें कई परतें दिखाई देती है। इसमें एक तरफ तरह-तरह के सरकारी स्कूल हैं तो दूसरी तरफ सस्ते प्राइवेट स्कूल हैं जो गुणवत्ता के नाम पर निम्नस्तरीय शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। इस व्यवस्था में वहन करने की क्षमता के आधार पर अवसर मिलते हैं, और समाज के संपन्न तबकों, खासतौर से महानगरीय एवं अन्य शहरी इलाकों के अभिजात्य वर्ग के लिए ऐसे निजी स्कूलों की व्यवस्था पैदा हुई है जो लगातार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जुड़ते जा रहे हैं। हो सकता है कि एनईपी 2020 सामाजिक न्याय और आर्थिक परिस्थितियों की विभाजक रेखा को धुंधला करके और शैक्षिक अभिशासन के केंद्रीकरण के माध्यम से देश की लोक शिक्षा व्यवस्था में विभेदों को संस्थागत मान्यता देकर इन गहरी शैक्षिक असमानताओं को और ठोस शक्ल दे दे।[२६]

अध्यापक और उसकी शिक्षा

आजादी के बाद बने प्रमुख शिक्षा आयोगों और समितियों[३०] ने इस बात पर बार-बार जोर दिया है कि भारत की शिक्षक-शिक्षा व्यवस्था में आमूल बदलावों की जरूरत है। इस व्यवस्था को औपनिवेशिक सोच, संस्थागत संरचनाओं व व्यवहारों से मुक्त कराने और इसे समकालीन स्कूली यथार्थ व अनौपनिवेशिक ज्ञान की नई सीमाओं से परिचित कराने के लिए कई तरह की कोशिशें की गई हैं (बत्रा, 2005)। इसके बावजूद यह क्षेत्र पिछले 70 सालों से भी अधिक समय से लगभग एक ही ढर्रे पर चलता जा रहा है और नब्बे के दशक से तो यह दिन-प्रतिदिन निजी घरानों और संस्थाओं के नियंत्रण में जाता गया है जिससे भारत का सर्वोच्च न्यायालय भी इसे मुक्त नहीं करा पाया है (भारत सरकार, 2012)।

इस स्थिति को विभिन्न प्रकार के बेतुके नीतिगत प्रावधानों से भी बढ़ावा मिला है। औपचारिक स्कूली व्यवस्था में पैरा टीचर्स की बड़ी संख्या में भर्ती नब्बे के दशक के मध्य से सरकारी प्रारंभिक शिक्षा नीति का एक अभिन्न और महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है। यह बदलाव इस बात का नतीजा है कि शिक्षा नीति निर्माता भी अब स्कूल पूर्व शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में किसी तरह के बदलाव की जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं हैं। भारी-भरकम ड्रॉपआउट दर वाले राज्यों में पैरा टीचर्स की बड़े पैमाने पर भर्ती, सहभागिता व सफलता दर में गिरावट (रामचंद्रन, 2003) और विभिन्न प्रकार की खर्च कटौती रणनीतियों की बदौलत स्कूली शिक्षा की हालत और ज्यादा खस्ता हो गई है (बत्रा, 2005)।

समतापरक और स्तरीय शिक्षा हासिल करने में शिक्षक-शिक्षा की संभावित भूमिका को हाशिए पर ढकेलना सुचिंतित नीतिगत विमर्श का नतीजा है। इसी का परिणाम है कि असम, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल जैसे शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े कुछ राज्यों में शिक्षक-शिक्षा व्यवस्था की क्षमता आज भी आवश्यकता से बहुत कम है। कई राज्यों

---

[29] See : Is NEP 2020 Designed to Deliver Equitable Quality Public Education?

[30] शिक्षा आयोग (1964-66) ने शिक्षक-शिक्षा को पेशेवर रूप देने की सिफारिश की थी। राष्ट्रीय शिक्षक आयोग (1983-85) ने अध्यापकों के लिए पांच वर्षीय समेकित पाठ्यक्रमों एवं इंटर्नशिप का सुझाव दिया था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई) (1986) में भी शिक्षक-शिक्षा के आमूल पुनर्गठन की वकालत की गई थी। एनपीई समीक्षा समिति (1990) और नैशनल एडवाइजरी कमेटी ऑन लर्निंग विदाउट बर्डन (1993) में भी शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधारों की जरूरत पर जोर दिया था और इस मद में कई प्रकार के सुझाव पेश किए थे।

में सेवा पूर्व शिक्षा कार्यक्रमों के स्थान पर सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए गए है जिनमें पैरा टीचर्स (जिन्हें अब अनुबंधित/कांट्रेक्चुअल शिक्षक कहा जाता है) को प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रकार, इन राज्यों में स्तरीय शिक्षा की गिरावट को एक 'संस्थागत' मान्यता दे दी गई है (बत्रा, प्रकाशनाधीन)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मसविदा (भारत सरकार, 2019) में व्यक्त किए गए सबसे हालिया अनुमानों से पता चलता है कि "आज देश में अध्यापकों के 10 लाख से ज्यादा पद खाली हैं - इनमें से विशाल बहुसंख्या ग्रामीण स्कूलों में है - जिसकी वजह से विद्यार्थी-अध्यापक अनुपात (प्यूपिल-टीचर रेशियो, पीटीआर)[३१] कई जगह 60:1 से भी ऊपर जा चुका है।" एआईएसएचई (2019) के अनुमानों[३२] के मुताबिक माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण से 5.1 लाख और प्रारंभिक शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था से लगभग एक लाख उम्मीदवार शिक्षा लेकर निकले हैं। यह संख्या अध्यापकों के खाली पड़े पदों की संख्या के मुकाबले बहुत ही कम है। तिस पर भी टीईटी की अर्हत्ताओं के हिसाब से इनमें से भी केवल 15 प्रतिशत सफलतम परीक्षार्थी ही (प्रारंभिक स्तर पर) अध्यापक बनने की योग्यता रखते हैं।[३३] यूडीआईएसई डेटा[३४] के मुताबिक और आरटीई के नियमों के हिसाब से जरूरत इस बात की है कि देश के 15 लाख स्कूलों में पढ़ने वाले एलीमेंटरी और सेकेंडरी कक्षाओं के बच्चों के लगभग 2.5 करोड़ लिए लगभग 8 लाख अध्यापकों को फौरन तैयार व नियुक्त किया जाना चाहिए।

पहले दशक में आए आरटीई और एनसीएफ, इन दोनों महत्वपूर्ण दस्तावेजों में भी सामाजिक रूप से न्यायपरक शिक्षा प्रदान करने के लिए अध्यापक की केंद्रीय भूमिका और स्थान सुनिश्चित करने वाली क्रियान्वयन योग्य रूपरेखा की जरूरत पर जोर नहीं दिया। खराब लर्निंग आउटकम्स और सीखने के लिए एक अपर्याप्त माहौल, ये दोनों बातें आपस में जुड़ी हुई हैं, यह बात ज्यादातर नीति निर्माताओं और शोधकर्ताओं के खयाल में नहीं आ सकी। नतीजा, जो नीतिगत प्रावधान तय किए गए उनमें इस तथ्य को पूरी तरह नकार दिया गया कि हमारे प्रारंभिक स्कूलों में पढ़ाने वाले ज्यादातर अध्यापक आवश्यकता से कम योग्यता वाले हैं या उचित योग्यता व प्रशिक्षण से वंचित हैं। इसका नतीजा यह हुआ कि साल 2020 में भी देश के ज्यादातर स्कूली शिक्षक अल्प-प्रशिक्षित हैं, उन्हें उचित मेहनताना नहीं मिलता और उन्हें शिक्षा की एक ऐसी उपयोगितावादी व्यवस्था का प्रेरणारहित औजार भर बना दिया गया है जो मूल रूप से एक औपनिवेशिक व्यवस्था को सींचने के लिए स्थापित की गई थी (बत्रा, प्रकाशनाधीन)।[३५]

इन तमाम उतार-चढ़ावों के बाद आखिरकार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गठित एक उच्चस्तरीय आयोग - न्यायमूर्ति वर्मा शिक्षक शिक्षा आयोग (भारत सरकार, 2012) - ने शिक्षकों और शिक्षक-शिक्षा की खस्ता हालत को देश के सामने बेहद मुखर रूप से उजागर किया। वर्मा आयोग ने बताया कि ज्यादातर अध्यापक घटिया 'टीचिंग शॉप्स' वाली एक ऐसी निजी शिक्षा व्यवस्था से प्रशिक्षण और योग्यता लेकर आए हैं जो कक्षाओं की विविध परिस्थितियों की शैक्षिक आवश्यकताओं को संबोधित नहीं कर सकती। आयोग ने बताया कि इन अध्यापकों का एक अच्छा-खासा तबका ऐसे लोगों का है जो उच्च शिक्षा केंद्रों से पूरी तरह कटे सेवा-पूर्व संस्थानों से कच्चा-पक्का प्रशिक्षण लेकर आए हैं। आयोग ने ये भी कहा कि ऐसे संस्थानों की पाठ्यचर्या और शिक्षाशास्त्रीय सामग्री बहुत पुरानी है। आयोग ने बताया कि आरटीई कानून से पहले के सालों में निजी शिक्षक शिक्षा संस्थानों की संख्या में कई गुना इजाफा हुआ था और एनसीटीई इन स्तरहीन शिक्षक शिक्षा संस्थानों के कुकुरमुत्तों की तरह फैलाव को रोकने में विफल रहा है जिसकी वजह से इस क्षेत्र में बेहिसाब निजीकरण और व्यावसायीकरण हुआ है।

साल-दर-साल निजी शिक्षक शिक्षा संस्थानों में इस जबर्दस्त इजाफे से एक और असंतुलन पैदा हुआ है। ऐसे ज्यादातर संस्थान शहरी इलाकों में पैदा हुए हैं और ग्रामीण इलाके पीछे छूट गए हैं। इसकी वजह से समाज के हाशियाई समूहों, खासतौर से ग्रामीण और तुलनात्मक रूप से दूर-दराज के इलाकों में शिक्षक शिक्षा सुविधाओं की पहुंच और उपलब्धता बहुत सीमित हुई है। "जिन जिलों में शिक्षक शिक्षा संस्थानों में दाखिला लेने वाले उम्मीदवारों की संख्या कम है, ऐसे बहुत सारे जिले प्रायः उन

---

[31] आरटीई के प्रावधानों के अनुसार अनिवार्य विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात 30:1 होना चाहिए।

[32] इनमें माध्यमिक शिक्षक-शिक्षा के लिए बीएड, बीएससी/बीए-बीएड तथा प्रारंभिक शिक्षक-शिक्षा के लिए डीएड और डीएलएड भी शामिल हैं। एआईएसएचई ने प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में डीएलएड की डिग्री का जिक्र नहीं किया है जिससे प्रतिवर्ष कुछ सौ विद्यार्थी डिग्री लेकर निकलती हैं।

[33] जुलाई 2019 में सीटीईटी परीक्षा के लिए आवेदन करने वाले 23.77 लाख उम्मीदवारों में से 14.80 प्रतिशत ही परीक्षा में उत्तीर्ण पाए गए थे। यह पिछले सालों के मुकाबले निश्चित रूप से एक बेहतर स्थिति थी। पहले के सालों में तो एसटीईटी और सीटीईटी परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले उम्मीदवारों की संख्या 5-7 प्रतिशत तक भी चहुंच गई थी। https://www.businesstoday.in/latest/trends/cbse-ctet-2019-results-out-in-record-23-days-35-lakh-candidates-qualify-here-is-how-to-check-scores/story/369103.html, 2 मार्च 2020 को देखा।

[34] स्रोत : http://udiseplus.gov.in/mainhome#, 8 जनवरी 2020 को देखा।

[35] विभिन्न विचारकों ने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि शिक्षक-प्रशिक्षण की विषयवस्तु, नमूना पाठ व्यवस्था और सुपरविजन के कायदे-कानून एक सदी से भी ज्यादा समय से यथावत चले आ रहे हैं (देखें कृष्ण कुमार, 2005 एवं पूनम बत्रा, 2005)।

राज्यों में है जहां अजा एवं अजजा आबादी का अनुपात 25% से अधिक है। जिन राज्यों[३६] में प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या आवश्यकता से अधिक है, वहां भी 25% से अधिक अजा एवं अजजा आबादी वाले जिलों में इन संस्थानों में दाखिला लेने वाले उम्मीदवारों की संख्या कम रहती है” (बत्रा, 2021:5)।

मान्यताप्राप्त निजी शिक्षक शिक्षा संस्थानों की संख्या[३७] 2011-19 के बीच 13% और बढ़ चुकी है। 2011 के बाद निजी शिक्षक शिक्षा संस्थानों के फैलाव पर जो आंशिक अंकुश लगा है, उसे न्यायमूर्ति वर्मा आयोग द्वारा स्तरहीन निजी ‘टीचिंग शॉप्स’ के प्रति एक अस्वीकृति या आपत्ति का परिणाम माना जा सकता है। मगर, आयोग ने शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी निवेश बढ़ाने की जो सिफारिश की थी वह लगभग उपेक्षित रही है। एनईपी 2020 में भी इसका कोई उल्लेख नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप के बावजूद शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी निवेश बहुत कम है और शिक्षक शिक्षा व्यवस्था उच्च शिक्षा तंत्र से अभी भी अलग-थलग ही चल रही है। 2009-10 में स्कूली शिक्षा पर होने वाला व्यय 1.3% था जो 2018-19 में घटकर केवल 1.1% रह गया था। जिन राज्यों में पेशेवर योग्यता से वंचित अध्यापकों की संख्या ज्यादा है (उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार और पश्चिम बंगाल) वहां तो शिक्षक प्रशिक्षण पर स्कूली शिक्षा बजट का 1% भी खर्च नहीं किया जा रहा है (कुंडू, 2019)।

शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण के लिए किए गए शिक्षक शिक्षा सुधारों सहित कई लक्ष्य केंद्रित नीतिगत उपाय भी समतापरक स्तरीय शिक्षा मुहैया कराने के उद्देश्य से हानिकारक साबित हुए हैं। इस तरह के बहुत सारे व्यवस्थागत उपायों से असमानता को संस्थागत मान्यता मिली है और सीखने के स्तरों में गिरावट आई है। सर्वशिक्षा अभियान और शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण की दिशा में मिली शुरुआती भौतिक एवं सामाजिक सफलताओं के बाद वैसे परिणाम नहीं मिल पाए। यह बात बच्चों के लर्निंग स्तरों में आ रहे ठहराव को देखकर जाहिर हो जाती है।[३८] संसाधनों और गुणवत्ता; पैरा एवं अनुबंधित शिक्षकों की नियुक्तियों की बाढ़; स्कूली अध्यापकों का सक्षम कैडर तैयार करने की संस्थागत जिम्मेदारी से राज्य का हाथ खींच लेना; और स्कूली शिक्षा में सुधार की चर्चाओं और विमर्श से अध्यापकों की लगभग अनुपस्थिति, इन सबकी बदौलत सरकारी तंत्र लगभग निष्प्रभावी और अनाकर्षक हो चुका है।

स्तरीय शिक्षा को एक संस्थागत मान्यता और टिकाऊपन प्रदान करना भारतीय स्कूली शिक्षा के लिए अभी भी एक चुनौती बनी हुई है हालांकि हम सार्विक पहुंच के लक्ष्य के काफी नजदीक पहुंच रहे हैं। कक्षाओं में विविधता और अध्यापकों की सीमित तैयारी जैसी पेचीदा समस्याओं का हल निकालने में राज्य की विफलता के साथ-साथ, स्तरीय शिक्षा संबंधी नीतिगत बहसों में अंतर्राष्ट्रीय विमर्श की झलक भी दिखाई दे रही है जिसके चलते पहले दशक के दौरान लर्निंग आउटकम्स पर फोकस केंद्रित होता गया है क्योंकि इस दिशा में किए जाने वाले उपायों को आसानी से दोहराया और फैलाया जा सकता है। इसकी वजह से एक ऐसा नीतिगत विमर्श सामने आया है जो प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले मगर बहुत न्यून शैक्षिक परिणामों पर आश्रित है - यह विमर्श बच्चों के उपलब्धि प्राप्तांक और अध्यापकों की जवाबदेही पर केंद्रित है। लर्निंग आउटकम्स पर इस अतिशय फोकस ने सामाजिक न्याय की चिंताओं को स्तरीय शिक्षा की चिंताओं से अलग कर दिया है, अध्यापकीय ज्ञान को बेहद कुंद कर दिया है और अध्यापक की ज्ञानशास्त्रीय पहचान को क्षीण किया है।

समतापरक स्तरीय शिक्षा के लक्ष्य को साकार करने के लिए प्रयासरत व्यवस्था को बहाल करने की प्रक्रिया में अध्यापक और उनकी तैयारी एक गायब कड़ी है। अध्यापकों को इस आशय के साथ प्रशिक्षण दिया जाता रहा है कि वे बच्चों की लर्निंग को आगे बढ़ाने के लिए ‘व्यावहारिक ज्ञान’ के इर्द-गिर्द केंद्रित न्यूनतम एजेंडा को लागू करेंगे। राष्ट्रीय नियमन एवं पाठ्यचर्या रूपरेखाएं भी स्थानीय चिंताओं, भाषाओं और ज्ञान भंडारों व परंपराओं को संबोधित करने में विफल रही हैं। फलस्वरूप, अध्यापक - जो बौद्धिक और राजनीतिक एजेंसी से रहित हो चुका है - को धीरे-धीरे इसी न्यूनतम सुधार एजेंडा को पूरा करने का वाहक बना लिया गया है।

शिक्षक शिक्षा व्यवस्था दशकों से एक बौद्धिक अलगाव की शिकार रही है। यह सख्त और बेतुके कायदों और स्तरहीन निजी शिक्षक शिक्षा संस्थानों के बेलगाम फैलाव का भी नतीजा है। यह व्यवस्था विश्वविद्यालयों से लगातार कटी रही है। सरकारों द्वारा संस्थागत क्षमता निर्माण की गहन उपेक्षा की वजह से शिक्षक शिक्षकों की तैयारी में भी भारी कमियां बनी रही हैं। एक मजबूत शिक्षक शिक्षा समुदाय के अभाव में शैक्षिक सिद्धांतों के प्रश्नों और व्यवहार पर गैर-आलोचनात्मक रुझान हावी रहा है और अब यह एक सामान्य चलन बन चुका है।

---

[36] इनमें केरल, गुजरात, पंजाब और उत्तराखंड शामिल हैं।

[37] स्रोत : https://www.ncte.gov.in/Website/RecognizedInstitutions.aspx, 6 जनवरी 2020 को देखा।

[38] विलेमा वाधवा (वाधवा, 2019, पृष्ठ 19) का कहना है कि समता के दृष्टिकोण से ये बहुत ही चिंताजनक प्रवृत्ति दिखाई देती है कि “निचले स्तर पर अटकने वाले बच्चों की संख्या हर नए सत्र में लगातार बढ़ती जा रही है।”

इस समस्या को दूर करने के लिए ही राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2009 (नैशनल करिक्युलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन - एनसीएफटीई) पारित की गई थी। यह रूपरेखा शिक्षा अधिकार कानून के नियमन धरातल पर तथा एनसीएफ में टीचिंग व लर्निंग के सामाजिक संदर्भ पर चिंतनशील विमर्श पैदा करने के आवाह्न की रोशनी में तैयार की गई थी। इस पाठ्यचर्या में अध्यापकों को सिखाई जा रही कृत्रिम तटस्थता और "अराजनीतिक मुद्रा" को चुनौती देने और तोड़ने की कोशिश की गई थी। अब तक अध्यापकों की शिक्षा में इस तटस्थता और अराजनीतिक मुद्रा पर बहुत जोर दिया जाता है। एनसीएफटीई ने इसका आधार तैयार किया कि भावी शिक्षक औपचारिक ज्ञान को जीवन अनुभवों के साथ जोड़कर देखें और उन सामाजिक यथार्थों पर प्रश्न उठाने की कोशिश करें जिन्हें वे बदलना चाहते हैं। इस चिंतनशील सक्रियता में सामाजिक असमानताओं को निष्क्रिय रूप से चुपचाप स्वीकार कर लेने के स्थान पर विविधता और स्थानीयता को ध्यान में रखते हुए एक रचनात्मक प्रतिक्रिया की संभावना पर जोर दिया गया।

मगर, सरकारी विजन के अभाव और नवउदारवादी नीतियों के प्रति प्रतिदिन बढ़ती प्रतिबद्धता के चलते इस व्यवस्थागत बदलाव को वैसा विस्तार नहीं मिल सका जैसा मिलना चाहिए था। इस नई रूपरेखा के आने के बाद भी सेवाकालीन और सेवापूर्व शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम अध्यापकों के व्यावहारिक ज्ञान को ही वरीयता देते रहे; सैद्धांतिक सक्रियता के महत्व को खारिज करते रहे और कई जगह तो विश्वविद्यालय आधारित कार्यक्रमों के स्थान पर अल्पकालिक सर्टिफिकेट प्रोग्रामों की हिमायत भी की जाने लगी है।

सर्वोच्च न्यायालय के हस्तक्षेप के फलस्वरूप सेवापूर्व शिक्षक शिक्षा की अवधि में इजाफा तो हुआ मगर इसके लिए कोशिश नहीं की गई कि राज्य सरकारें भी एनसीएफटीई के विजन को साकार रूप देने के लिए अपनी संस्थागत क्षमता में इजाफा करें। अध्यापकीय ज्ञान के दुर्बल ज्ञानशास्त्रीय आधार, स्कूली ज्ञान की समस्याप्रद अवधारणा, और शिक्षक के ज्ञान को केवल नवउदारवादी चौखटे में सीमित कर देने वाली प्रवृत्तियां अभी भी अध्यापकों की शिक्षा का हिस्सा हैं। इस शिक्षा के सहारे विविधतापूर्ण कक्षाओं को संबोधित नहीं किया जा सकता।

लर्निंग आउटकम्स पर दिए जा रहे नवउदारवादी दबाव, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नैतिक आदर्शों को बहाल करने तथा अध्यापकों को प्रदर्शन की सख्त कसौटियों पर आंकने की चेष्टाओं ने अध्यापक और उसके ज्ञान की भूमिका को हाशिए पर धकेल दिया है। एनईपी, 2020 में कहा गया है कि पूरे देश में शिक्षक शिक्षा की एक ही पाठ्यचर्या लागू की जाएगी। ऐसा करना न केवल एक विविधतापूर्ण समाज के हिसाब से हानिकारक होगा बल्कि पाठ्यचर्याओं के निर्धारण में विश्वविद्यालयों की भूमिका परएनसीएफटीई और जेवीसी (न्यायमूर्ति वर्मा आयोग) द्वारा दिए गए सुझावों की भी अवहेलना है। शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण को निजी एजेंसियों के हवाले करना और लोक नीति के क्षेत्र में कथित परोपकारी संस्थानों के बढ़ते प्रभाव - जिसका एनईपी 2020 में ब्यौरा दिया गया है - से भारतीय कक्षाओं की विविधतापूर्ण और असमानता जैसी चुनौतियों को संबोधित करने में मदद नहीं मिलेगी। सुधारों के नाम पर चलाए जा रहे मौजूदा नीतिगत विमर्श में सामाजिक रूपांतरकारी शिक्षा की भूमिका को राजनीतिक रूप से अप्रासंगिक बनाने की कोशिशें की जा रही हैं जबकि भारत के संविधान में इस रूपांतरण का आश्वासन दिया गया था (बत्रा, शीघ्र प्रकाश्य)।

स्कूली अध्यापक पर निजी हितों के इस नियंत्रण से समता व सामाजिक न्याय की संविधान में दी गई नीतिगत रूपरेखा के प्रति प्रतिबद्धता बेहद क्षीण हुई है। सर्वोच्च न्यायालय ने इन कोशिशों पर अंकुश लगाने के लिए हस्तक्षेप तो किया है मगर गहरी जड़ें फैला चुके निजी क्षेत्र और खस्ताहाल सरकारी व्यवस्था का संस्थागत गठजोड़ आज भी शिक्षक शिक्षा नीति और व्यवहार पर हावी है।

उच्च शिक्षा

भारत में अंग्रेजों ने विश्वविद्यालयों की स्थापना दो उद्देश्यों से की थी। एक तो वो ऐसे कुशल नौजवान तैयार करना चाहते थे जो भारत में उनका शासन चला सकें और दूसरी तरफ वो भारतीय अभिजात्य वर्ग को 'श्रेष्ठ युरोपीय संस्कृति' का वाहक और प्रतिनिधि बनाना चाहते थे। कहने को तो भारत के विश्वविद्यालय लंदन विश्वविद्यालय की तर्ज पर स्थापित किए गए थे मगर वास्तव में अंग्रेजों ने यहां जो उच्च शिक्षा संस्थान खोले वे लंदन विश्वविद्यालय के अकादमिक स्तर और उत्कृष्टता को छूने के लिए नहीं बनाए गए थे (ऐश्बी एवं ऐन्डरसन, 1996; बसु, 1974)। ये संस्थान केवल बाहरी तौर पर ही लंदन विश्वविद्यालय जैसे दिखाई देते थे। 1857 में बंबई, कलकत्ता और मद्रास में प्रेजीडेंसी विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई और इसके बाद के कुछ ही दशकों के भीतर इस विसंगति के अपरिहार्य नतीजे सामने आने लगे थे। भारतीय विश्वविद्यालयों में जो पाठ्यक्रम पढ़ाए जो रहे थे उनका मकसद भारतीयों में विश्लेषण या आलोचनात्मक चिंतन की क्षमता पैदा करना नहीं था बल्कि वे भारतीयों को यूरोपीय संस्कृति, दर्शन, इतिहास, विचारों, भाषाओं आदि से अवगत कराने पर केंद्रित थे। यहां तक कि जब उस वक्त के एक जाने-माने भारतीय उद्योगपति ने अपने पैसों से इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस नामक एक अग्रणी भारतीय विज्ञान विश्वविद्यालय

की स्थापना की तो उस पर भी इस तरह के अंकुश लगाए गए जिसके फलस्वरूप वहां सामाजिक एवं व्यवहार विज्ञानों या मानविकी के विषयों के लिए कोई जगह नहीं बची जबकि संस्थापक चाहते थे कि विज्ञान और मानविकी विषयों के बीच लगातार संबंध बना रहे (बलराम, 2009)। इन विश्वविद्यालयों में जो सूचनाएं अर्जित की जा रही थीं और जिनका प्रसार किया जा रहा था उनसे निष्क्रिय और दब्बू ग्रहणशीलता की अकादमिक संस्कृति पैदा हुई। इस संस्कृति में शिक्षा केवल नौकरी और हैसियत दिलाने वाले प्रमाण पत्र बांटने का जरिया भर बनकर रह गई थी (चिटनीस, 1993)। यह विरासत आज भी उतनी ही मजबूत है।

टैगोर और गांधी जैसे प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं ने भारतीय संस्कृतियों को पुनर्जीवित करने और युवाओं को स्वतंत्रता आंदोलन की ओर आकर्षित करने के लिए नए राष्ट्रवादी विश्वविद्यालयों की स्थापना में योगदान दिया। 1920 के दशक में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन के दौरान युवाओं से आवाह्न किया कि वे अपने-अपने कॉलेज छोड़कर कांग्रेस के नेतृत्व में खोले गए 'नैशनल कॉलेजों' में दाखिला लें। युवाओं की तरफ से इस आवाह्न को जबर्दस्त समर्थन मिला था। ये नैशनल कॉलेज ज्यादा दिन तक चल तो नहीं पाए मगर उन्होंने परंपरागत औपनिवेशिक शिक्षा की आधारशिला को जरूर झिंझोड़ दिया था।

आजादी के संघर्ष के दौरान गांधीजी चाहते थे कि आर्थिक वृद्धि के केंद्र में ग्रामीण भारत को होना चाहिए मगर आजादी के बाद भारतीय अभिजात्य शासकों को ये बात उतनी आकर्षक नहीं लगी। इसके बावजूद, ग्रामीण विश्वविद्यालय की इस धारणा के कुछ बीज और सुराग आजाद भारत में गठित किए गए पहले शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में दिखाई पड़ते हैं। 1948-49 में दार्शनिक एस. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित युनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन ने मानवतावादी, शैक्षिक एवं सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यों की रूपरेखा पेश की थी जिस पर आज तक काम नहीं किया गया है। नतीजा ये है कि आज 2020 में भी ज्यादातर उच्च शिक्षा संस्थान शहरों के आसपास या शहरों के भीतर ही स्थित हैं।

जिस वक्त भारत आजाद हुआ तब तक शहरी भारत के उच्च वर्गों और उच्च जातियों का एक बहुत बड़ा तबका अपनी संस्कृतियों से छिटक कर 'पश्चिमी' जीवनशैली की तरफ जा चुका था। भारतीय विश्वविद्यालयी शिक्षा ने इस गति को और तेज कर दिया। पश्चिमी ज्ञान एवं शिक्षा की श्रेष्ठता में यह निहित आस्था आजादी के बाद भी कायम रही (चिटनिस, 1993)। विश्वविद्यालयों ने भाषा और पहचान से संबंधित विचारों पर ध्यान दिया, स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों में पढ़ाई के मीडियम के तौर पर विभिन्न भाषाओं के औचित्य के बारे में बहस छेड़ी, मगर जैसा की ऐश्बी एवं ऐन्डरसन (1966) ने कहा है, इसके बाद भी उच्च शिक्षा का औपनिवेशिक पश्चिमी मॉडल समकालीन भारत का अभिन्न अंग बना रहा।

डी. एस. कोठरी की अध्यक्षता में 1964-66 के बीच एक और शिक्षा आयोग का गठन किया गया। यह आयोग 1950 और '60 के दशकों के भारत की विकासोन्मुखी विचारधारा को प्रतिबिंबित करता है। 1944 के बॉम्बे प्लान और युद्धोत्तर योजना ने इस समझ को निखारने में अहम भूमिका अदा की थी। लिहाजा, कोठारी आयोग ने भी महानगरीय विश्वविद्यालयों की स्थापना पर ही जोर दिया। यह सोच शहर-केंद्रित भारतीय नियोजन प्रक्रिया से मेल खाती थी (चौधरी, 2017)। आजादी के बाद पहले तीन दशकों के दौरान आधुनिक विज्ञान व तकनीक तथा औद्योगीकरण हेतु उच्च शिक्षा में निवेश पर सरकार ने काफी दिलचस्पी ली। इससे उत्पादन में इजाफे और आत्मनिर्भरता का लक्ष्य हासिल करने की उम्मीद की जा रही थी।[३९] इसी दौरान भारत के कुछ अग्रणी प्रौद्यागिकी, प्रबंधन, शोध एवं अकादमिक संस्थान स्थापित किए और अपेक्षा व्यक्त की गई कि यह शिक्षा एक आधुनिक राज्य की स्थापना में निर्णायक भूमिका निभाएगी। इसका एक अनचाहा नतीजा ये हुआ कि पूरे देश में प्रारंभिक एवं स्कूली शिक्षा की उपेक्षा होने लगी जिससे आने वाले समय में भारत के मानव एवं आर्थिक विकास के लिए बहुत हानिकारक प्रभाव सामने आए।

ऐतिहासिक अतीत का भार भारतीय उच्च शिक्षा पर एक भारी बोझ साबित हुआ है। मुख्यधारा की अकादमिक व्यवस्था आज भी इस ऐतिहासिक अतीत के शिकंजे को तोड़ नहीं पाई है। जैसा कि ऑल्टबाख (1993) ने कहा है, यहां अतीत से विच्छेद करने या उल्लेखनीय ढंग से अपनी व्यवस्था को खोलने की इच्छा-शक्ति भी दिखाई नहीं देती।

भारत में उच्च शिक्षा व्यवस्था का विस्तार प्रभावशाली मगर अधूरा रहा है। 1950-51 से 2012-13 के बीच राष्ट्रीय महत्व के विश्वविद्यालयों और संस्थानों की संख्या 27 से बढ़कर 665 हो चुकी थी; और 2013-14 में 691 तक पहुंच गई थी। इसी दौरान कॉलेजों की संख्या 578 से 36,000 और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या दो लाख से बढ़कर लगभग तीन करोड़ तक पहुंच गई थी। फिलहाल भारत में 993 विश्वविद्यालय हैं और इनमें 2014 के बाद लगभग 31 प्रतिशत इजाफा हुआ है। इन 993 विश्वविद्यालयों में से 385 विश्वविद्यालय निजी हैं और 394 विश्वविद्यालय ग्रामीण इलाकों में स्थित हैं।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सबसे तेज विस्तार 2000 के दशक में दिखाई दिया। इस दौरान विद्यार्थियों के दाखिलों में जबर्दस्त इजाफा हुआ - 2001-02 में 90 लाख से बढ़कर 2012-13 में 3 करोड़। इसका मतलब ये है कि इस दौरान हर साल

---

[39] इस पर द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में भी जोर दिया गया था।

लगभग 20 लाख नए दाखिले होते गए जिसके आधार पर किसी भी दशक के दौरान यह उच्च शिक्षा के सबसे तेज विस्तार का दौर रहा। सकल दाखिला अनुपात (ग्रॉस एनरोलमेंट रेश्यो - जीईआर) भी 2014-15 में 24 था जो 2018-19 में बढ़कर 26 हो गया था। अनुसूचित जातियों में यही जीईआर 2014-15 में 19 था जो 2018-19 में 23 हो गया था जबकि अनुसूचित जनजातियों के लिए इसी दौरान जीईआर 14 से 17 पहुंच गया (एआईएसएचई)। जीईआर का प्रतिशत अलग-अलग राज्यों में एक जैसा नहीं रहा है हालांकि वृद्धि का रुझान सभी राज्यों में दिखाई देता है।

इस विस्तार प्रक्रिया के फलस्वरूप भारत उच्च शिक्षा के सार्विकीकरण की दिशा में बढ़ने लगा है। पिछले छह दशकों के दौरान उच्च शिक्षा के क्षेत्र में लागू की गई नीतियों और कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने पर ऐसा लगता है कि भारत सरकारी नियंत्रण वाली उच्च शिक्षा व्यवस्था से अब निजी वर्चस्व वाली उच्च शिक्षा व्यवस्था की तरफ बढ़ने लगा है। फिलहाल उच्च शिक्षा संस्थानों में 60 प्रतिशत से ज्यादा दाखिले निजी उच्च शिक्षा संस्थानों में हो रहे हैं। भारत में उच्च शिक्षा का यह प्रसार बाजार की शक्तियों और निजी संस्थानों पर ज्यादा और सरकारी संस्थाओं व सरकारी फंडिंग्स पर कम आश्रित है। विकसित देशों में इस तरह का सार्वजनिक फैलाव सरकारी संस्थानों के जरिए हुआ है मगर भारत में यह प्रक्रिया बाजार के अधीन चल रही है और इसमें गैर-सरकारी शक्तियां एक अहम भूमिका अदा कर रही हैं (वर्गीज, 2015)।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजी तत्वों की उपस्थिति को अस्सी के दशक के मध्य से ही बढ़ावा मिलने लगा था। उसी समय भारत सरकार और प्रादेशिक सरकारों ने शिक्षा में निवेश पर अंकुश लगाना शुरू किया था। उस समय कुछ लोग ये मानने लगे थे कि सेवा क्षेत्र की वृद्धि दर को कायम रखने के लिए सीमित शिक्षा से लैस श्रम शक्ति एक रुकावट है और फलस्वरूप उच्च शिक्षा में अधिक निवेश पर जोर दिया जाने लगा (वर्गीज, 2012)। इसी बीच केंद्र सरकार ने विश्व बैंक के इस प्रस्ताव को भी मंजूरी दे दी (शालिनी, 1994) कि शिक्षा मूल रूप से एक 'मेरिट-मुक्त' वस्तु है। इसके आधार पर उच्च शिक्षा क्षेत्र को बाजार की शक्तियों के लिए खोलने का सिलसिला शुरू हुआ। इसका अर्थ ये था कि (क) उच्च शिक्षा में सरकारी खर्च कम किया जाए; (ख) उच्च शिक्षा में निजी क्षेत्र की उपस्थिति बढ़े; (ग) फीस बढ़ाई जाए; (घ) कैपिटेशन फीस लागू की जाए; और (ङ) विश्वविद्यालयों को इसके लिए तैयार किया जाए कि वे निजी स्रोतों से फंडिंग जुटाने की कोशिश करें भले ही इसके लिए उच्च शिक्षा के मूल उद्देश्यों और मूल्यों की अवहेलना ही क्यों न करनी पड़े (दास, 2007)।

एक और गौरतलब बात ये है कि शिक्षा बजट में निजी शिक्षा संस्थानों को मिलने वाली सहायता भी 1990-91 के 45 प्रतिशत से 2000 तक आते-आते 48 प्रतिशत हो गई थी जबकि इस दौरान सरकारी संस्थानों के लिए दी जाने वाली सरकारी फंडिंग में गिरावट आ रही थी! लिहाजा, ये हैरानी की बात नहीं है कि साल 2001 तक आते-आते भारत के 42 प्रतिशत उच्च शिक्षा संस्थान निजी स्वामित्व वाले थे और उच्च शिक्षा संस्थानों में पढ़ने वाले 37 प्रतिशत विद्यार्थी इन्हीं संस्थानों में पढ़ रहे थे (दास, 2007)।

हमारे देश में उच्च शिक्षा में निजी निवेश का अभूतपूर्व फैलाव हुआ है। आज स्थिति ये है कि 75 प्रतिशत से अधिक उच्च शिक्षा संस्थान निजी क्षेत्र में हैं और उनमें 65 प्रतिशत से ज्यादा विद्यार्थी पढ़ते हैं (एआईएसएचई, 2019)। निजी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में जो उभार आया है, उसका एक बड़ा हिस्सा मुख्य रूप से तकनीकी और पेशेवर शिक्षा प्रदान करने वाले निजी सेल्फ फाइनेंसिंग कॉलेजों की देन है। उच्च शिक्षा का निजीकरण इंजीनियरिंग और बिजनेस एडमिनस्ट्रेशन (सुदर्शन एवं सुब्रहमण्यन, 2016) तथा शिक्षक शिक्षा (भारत सरकार, 2012) जैसे पेशेवर कोर्सों में विशेष रूप से दिखाई देता है।

इस अनियंत्रित फैलाव, खासतौर से व्यावसायिक मुनाफे के लिए चलने वाले संस्थानों के तेज फैलाव से व्यवसायीकरण को भी जबर्दस्त बढ़ावा मिला है। तेजी से फैलते निजी उच्च शिक्षा क्षेत्र का आर्थिक बोझ सरकार से आम लोगों के कंधों पर चला गया है (वर्गीज, 2021)।

सरकार उच्च शिक्षा को एक बाजार योग्य कमोडिटी मानती है। इस सोच के दम पर सरकार ने यहां तक प्रस्ताव रखा है कि "विद्यार्थियों से पूरी लागत वसूल की जाए और समूचे उच्च शिक्षा क्षेत्र का तत्काल निजीकरण किया जाए।" यह बिरला-अंबानी कमेटी (भारत सरकार, 2000) की सिफारिशों में से एक है। तदनुरूप, भारत सरकार ने उच्च शिक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी निजी क्षेत्र को सौंपने की प्रक्रिया शुरू कर दी है। राज्य सरकारों को प्रोत्साहित किया जा रहा है कि वे निजी विश्वविद्यालय कानून पारित करें, विद्यार्थियों से लागत वसूली की व्यवस्था लागू करें और आर्थिक व सामाजिक रूप से पिछड़े तबकों को शिक्षा ऋण व अनुदान दें।

वर्ष 2005 में गठित राष्ट्रीय ज्ञान आयोग (एनकेसी)[४०] ने व्यावसायिक लाभ के लिए चलने वाले शिक्षा संस्थानों को प्रोत्साहन नहीं दिया। था। 2008 में गठित यशपाल कमेटी[४१] ने भी कहा था कि निजी उच्च शिक्षा संस्थानों को केवल मुनाफे के उद्देश्य से नहीं चलाया जाना चाहिए। मगर, उपरोक्त दोनों कमेटियों ने ये सिफारिश जरूर की है कि शैक्षिक अवसरों को विस्तार देने के लिए उच्च शिक्षा में निजी निवेश को प्रोत्साहन देना होगा। निजी उच्च शिक्षा संस्थाएं प्रायः मुनाफे के उद्देश्य से संचालित दिखाई देती हैं मगर सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षा को मुनाफे का साधन मानने के खिलाफ स्पष्ट व्यवस्थाएं भी दी हैं और ये भी कहा है कि शिक्षा संस्थान मूलतः परोपकारी संस्थान होते हैं।[४२]

उच्च शिक्षा में असमानता

भारतीय समाज दो शताब्दी से भी ज्यादा समय से दोहरी बेदखली की मार झेल रहा है। पहले किस्म की बेदखली उसके औपनिवेशिक अतीत की बदौलत है जिसकी वजह से देश के विशाल भूभाग आज भी अविकसित और सघन गरीबी से ग्रस्त हैं। दूसरी समस्या है जाति, लिंग और धर्म पर आधारित सामाजिक ऊंच-नीच की व्यवस्था जो देश के हर समुदाय में दिखाई पड़ती है। ऊपरी तौर पर आधुनिक दिखाई देने वाली शिक्षा व्यवस्था में सालों तक की गई कोशिशों के बावजूद सामाजिक बेदखली और असमानता घटने की बजाय और तीखी होती दिखाई दे रही हैं। इसके पीछे एक बड़ा कारण ये है कि विभिन्न प्रकार के निजी स्वार्थ परंपरागत असमानताओं के साथ गुंथ गए हैं जिसकी वजह से ऊंची जातियों और वर्गों को ज्यादा लाभ मिलता है और बाकी तबके पीछे छूट जाते हैं। दूसरी तरफ राज्य को शिक्षा के क्षेत्र में जिस प्रकार की पुनर्वितरणकारी भूमिका अदा करनी चाहिए थी वह भी उसने अदा नहीं की और लगातार हाथ पीछे खींचता जा रहा है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बुनियादी ढांचे और दाखिलों में शानदार इजाफे के बावजूद भारत की सामाजिक, लैंगिक एवं क्षेत्रीय असमानताएं आज भी एक चुनौती बनी हुई हैं, खासतौर से उच्च शिक्षा के दिनोंदिन बढ़ते निजीकरण की स्थिति में।

आजादी के बाद उच्च शिक्षा ने सकारात्मक नीतियों के माध्यम से सामाजिक, जेंडर एवं आर्थिक असानताओं को संबोधित करने में एक निर्णायक भूमिका अदा की है। भारतीय विश्वविद्यालयों में बेदखली की चुनौती सिर्फ पहुंच की समस्या तक सीमित नहीं है जिसको दूर करने के लिए कुछ हद तक आरक्षण की व्यवस्था का सहारा लिया गया है। देशपांडे एवं ज़कारिया (2013) ने बताया है कि उच्च शिक्षा व्यवस्था में दाखिल होने के बाद भी विद्यार्थियों को तरह-तरह की बेदखली और असमानताओं का सामना करना ही पड़ता है। यह दिखाने वाले बहुत सारे साक्ष्य उपलब्ध हैं कि उच्च शिक्षा तक पहुंच जाति, वर्ग, धर्म और जेंडर की सख्त असमानताओं को एक हद तक दूर कर सकती है। परंतु, उच्च शिक्षा का जो ढांचा फिलहाल हमारे पास है वह संपन्न तबकों को और ज्यादा सुविधाएं प्रदान करने की कोशिश करता है जिससे उन्हीं असमानताओं को और बढ़ावा मिलता है जिनको खत्म करने का वह दावा कर रहा है।

---

[40] Report to the Nation: 2006-2009, National Knowledge Commission, March 2009, http://www.aicte-india.org/downloads/nkc.pdf.

[41] Report of the Committee to Advise on Renovation and Rejuvenation of Higher Education, 2009, http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/YPC-Report.pdf.

[42] सर्वोच्च न्यायालय के आदेश में कहा गया है कि "कैपिटेशन फीस या मुनाफाखोरी कतई नहीं होनी चाहिए"; तथा "संविधान के सभी अनुच्छेदों में 'शिक्षा' शब्द का आशय हर स्तर की शिक्षा से है, प्राथमिक शिक्षा से लेकर स्नोतकोत्तर तक। और 'शिक्षा संस्थानों' का आशय ऐसे सभी संस्थानों से है जो संविधान में निहित अर्थों में शिक्षा प्रदान कर रहे हैं" (पैरा 43)। "पाई फाउंडेशन एवं ईनामदार, दोनों ने शिक्षा के व्यावसायीकरण की स्पष्ट रूप से निंदा की है" (पैरा 142)। स्रोत : Supreme Court of India (2012). Society for Un-aided Private Schools of Rajasthan Vs. Respondent: Union of India (UOI) and Ors. MANU/SC/0311/2012.

उदाहरण के लिए, देशपांडे (2006) ने बताया है कि जातिगत भेदभाव "सुनियोजित और व्यवस्थागत शक्ल में काम कर रही स्थायी, खुद को सींचने वाली प्रणालियों का नतीजा है" (उपरोक्त, 2439)। उन्होंने दिखाया है कि क्योंकि हमारी उच्च शिक्षा व्यवस्था स्कूली शिक्षा पर आधारित पात्रता और अर्हताओं के आधार पर चलती है इसलिए इस उच्च शिक्षा व्यवस्था में एक विस्तृत छंटाई व्यवस्था काम करती है। प्रवेश परीक्षाएं "सामाजिक चयन की एक ऐसी प्रणाली हैं जो बेहतर स्कूली शिक्षा से लैस उम्मीदवारों को (अनुचित) लाभ प्रदान करती है" (देशपांडे एवं ज़कारिया, 2031 : 22)।

लिहाजा ये अचंभे की बात नहीं है कि वंचित सामाजिक तबकों में उच्च शिक्षा का प्रसार अभी भी बहुत ही कम है। इससे उच्च शिक्षा तक पहुंच के प्रसंग में शहरी-ग्रामीण असमानता और लैंगिक असमानता भी बहुत साफ दिखाई पड़ने लगती है (घोष, 2008)।

नब्बे के दशक में आयोजित जोमतिन सम्मेलन के बाद प्राथमिक शिक्षा पर जिस तरह एकांगी ढंग से जोर दिया गया, उसका एक नतीजा ये हुआ है कि सरकार उच्च शिक्षा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता में कटौती करती गई है और फलस्वरूप मांग व आपूर्ति का फासला बढ़ता जा रहा है (तिलक, 2004)। इसकी वजह से जो शूण्य पैदा हुआ उसे डीम्ड विश्वविद्यालयों, कॉलेजों, वोकेशनल शिक्षा एवं डिप्लोमा पाठ्यक्रमों आदि के रूप में निजी क्षेत्र ने भरने की कोशिश की है। इसकी वजह से 'उच्च शिक्षा में सरकारी विनिवेश' बढ़ा है (उपरोक्त) और सरकार अपनी जिम्मेदारी से पीछे हटने के साथ-साथ नियमन के स्तर पर भी बहुत खराब भूमिका अदा कर रही है।

भारतीय शिक्षा संस्थानों में जाति के आधार पर आरक्षण होता है जिसकी सबसे मुखर आलोचना इसके गैर-लचीले और सख्त स्वरूप को लेकर की जाती है। गौरतलब है कि उच्च शिक्षा और रोजगारों में आरक्षण की संवैधानिक व्यवस्था वोट बैंक आधारित राजनीति का एक मुख्य बिंदु बन गई है। एक के बाद एक आई विभिन्न सरकारों ने शैक्षिक नीतियों के धरातल पर दूरगामी बदलाव लाने की बजाय इस प्रावधान का सहारा लेकर अपनी सत्ता को बचाये रखने की कोशिशें की हैं। हाल ही में आर्थिक रूप से पिछड़े तबकों (इकोनॉमिकली वीकर सेक्शंस - ईडब्ल्यूएस)[४३] के लिए लागू की गई कोटे की व्यवस्था इसका एक अच्छा उदाहरण है। बहरहाल, जैसा कि घोष (2006) ने बताया है, आरक्षण की व्यवस्था सदियों से चली आ रही व्यवस्थागत सामाजिक एवं आर्थिक बेदखली पर अंकुश लगाने कीएक तुलनात्मक रूप से पारदर्शी और सरल व्यवस्था है।

देशपांडे और ज़कारिया (2013) के मुताबिक आरक्षण की सबसे महत्वपूर्ण उपयोगिता इस बात में है कि यह उस सामाजिक अनुबंध को मान्यता देता है जिस पर भारतीय गणतंत्र की स्थापना की गई थी। जैसा कि सिन्हा (2017) कहते हैं, "...अगर सकारात्मक कार्रवाई को प्रभावी बनाना है तो उच्च शिक्षा को एक दुर्लभ संसाधन बनाकर काम नहीं किया जा सकता" (उपरोक्त, 1178)।

स्तरीय उच्च शिक्षा संस्थान मुहैया कराने में राज्य की अक्षमता से न केवल मौजूदा शैक्षिक असमानताओं में इजाफा हुआ है बल्कि सामाजिक ऊंच-नीच को भी बल मिला है। गौरतलब है कि बढ़ते निजीकरण की बदौलत शिक्षा एक लोक सुविधा के स्थान पर खरीदी-बेची जाने वाली चीज बनकर रह गई है। बाजार की शक्तियों पर लगातार बढ़ती निर्भरता के खिलाफ किए गए नीतिगत उपायों (तिलक, 2008; 2014) ने उच्च शिक्षा को गरीबों और समाज के सबसे हाशियाई तबकों की पहुंच से और दूर कर दिया है। इन वंचितों की कतारों में महिलाओं की संख्या बहुत ज्यादा है।

---

[43] भारत सरकार ने संविधान (134वां संशोधन) विधेयक, 2019 पेश किया था जिसमें निवर्तमान अनारक्षित श्रेणी या सामान्य श्रेणी के विद्यार्थियों के बीच 10 प्रतिशत कोटा आर्थिक रूप से कमजोर तबकों (इकोनॉमिकली वीकर सेक्शंस - ईडब्ल्यूएस) श्रेणी के विद्यार्थियों के लिए आरक्षित करने का प्रावधान किया गया था।

सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षा के व्यावसायीकरण के खिलाफ स्पष्ट फैसले दिए हैं। इसके बावजूद न्यायालय ने निजी, गैर-सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थानों को सौ फीसदी प्रशासकीय स्वायत्तता भी दी है। इसका नतीजा ये है कि जैसे-जैसे निजी क्षेत्र फैलता जा रहा है, वह अजा, अजजा एवं ओबीसी जैसे सामाजिक रूप से वंचित और हाशियाई तबकों के लिए लागू आरक्षण की व्यवस्था की उपेक्षा करता जा रहा है।

उच्च शिक्षा में बढ़ते निजी निवेश के दम पर एक वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्धी श्रम शक्ति तैयार करने के लिए तो प्रयास किए जा रहे हैं मगर विकास संबंधी महत्वपूर्ण लक्ष्यों, उदार संवैधानिक, लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना और सामाजिक समावेशन, तथा पर्यावरणीय टिकाऊपन जैसे लक्ष्यों की दिशा में ज्यादा ध्यान नहीं दिया जा रहा है। विशेषज्ञों का कहना है कि उच्च शिक्षा का जनसांख्यिकीय लाभ तभी हासिल किया जा सकता है जब यह समावेशी भी हो - एक ऐसी शिक्षा जो ऐतिहासिक रूप से वंचित तबकों को नए-नए अवसर प्रदान करे (गोस्वामी, 2012)। निजी शिक्षा क्षेत्र को समावेशी शिक्षा एवं विविधता को एक अनिवार्य और सार्थक लक्ष्य के रूप में अपनाना होगा। निजी गैर-सहायता प्राप्त संस्थाओं को फिलहाल जो स्वायत्तता मिली हुई है, उसके सहारे उन्हें इस तरह का समावेशी रवैया अपनाने, अधिक सकारात्मक नीतिगत प्रावधान करने के लिए उचित साधन व तरीके विकसित करने होंगे। इसी से ये सुनिश्चित किया जा सकता है कि विश्वविद्यालयी शिक्षा सामाजिक न्याय को बढ़ाने, उदार संवैधानिक लोकतंत्र के लक्ष्यों को साकार करने, बौद्धिक उद्देश्यों की प्राप्ति और सामुदायिक सक्रियता को बढ़ाने में योगदान दे (गोस्वामी, 2012)।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आ रहे फैलाव के साथ-साथ असमानताएं भी बढ़ती जा रही हैं, खासतौर से लैंगिक, सामाजिक एवं क्षेत्रीय असमानताएं बढ़ रही हैं। बीते दशकों के अनुभवों से पता चलता है कि उच्च शिक्षा क्षेत्र के तीव्र विस्तार, जो मुख्य रूप से निजी शिक्षा संस्थानों की देन है, के साथ-साथ असमानताएं भी बढ़ती जा रही हैं। ऐसे में लोक नीति के धरातल पर एक मुख्य प्रश्न ये बन जाता है कि व्यवस्था को विस्तार देने के साथ-साथ असमानताओं पर अंकुश लगाने की व्यवस्था कैसे की जाए। इसके लिए सामाजिक रूप से वंचित तबकों को उच्च शिक्षा के अवसर प्रदान करने के लिए नियमन की मजबूत और विकेंद्रीकृत व्यवस्था और लक्ष्य-केंद्रित सरकारी निवेश की व्यवस्था विकसित की जा सकती है।

शिक्षा के क्षेत्र में शोध के विषय

समकालीन भारत में शैक्षिक प्रावधानों के ऐतिहासिक अवलोकन और विश्लेषण से स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ मुख्य चिंताएं सामने आती हैं। पीछे उठाए गए सवालों के आधार पर कुछ संभावित शोध शीर्षक ये हो सकते हैं :

- शिक्षा के अर्थ और उद्देश्यों तथा स्तरीय शिक्षा की समझ में आ रहे प्रमुख अवधारणात्मक बदलावों की पड़ताल की जाए।
- ये समझने के लिए शिक्षा का विश्लेषण किया जाए कि सामाजिक, लैंगिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय आनुभविक अन्याय को बनाए रखने और बढ़ाने में शिक्षा किस तरह मददगार साबित हो रही है; और सामाजिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ समाजों को साकार करने में शैक्षिक समानता कितना सार्थक योगदान दे सकती है।
- 'लर्निंग क्राइसिस' (अधिगम संकट) के रूप में पेश किए जा रहे मौजूदा तर्कों पर सवाल खड़ा किया जाए और ये देखा जाए कि वर्ग, जाति, नस्ल, सामुदायिक, लैंगिक, विकलांगता आधरित और शैक्षिक असमानता जैसी अलग-अलग तरह की असमानताओं से हाशियाई या वंचित पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों के विकास और सीखने की दिशा में उनकी सफलताओं पर क्या असर पड़ते हैं।
- शिक्षक शिक्षा के माध्यम से स्कूली और उच्च शिक्षा के बीच आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय टिकाऊपन को सींचने वाले संपर्क कैसे स्थापित किए जाएं।
- स्कूली शिक्षा, शिक्षक शिक्षा और उच्च शिक्षा में स्थानगत असमानताओं का अध्ययन किया जाए और टिकाऊ विकास की संभावनाओं के साथ उसके संबंधों की पड़ताल की जाए।
- इसका अध्ययन किया जाए कि शिक्षक शिक्षा, स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा और पेशेवर शिक्षा का किस तरह रूपांतरण किया जा सकता है ताकि वह विवेचनात्मक ज्ञान के विकास, अध्यापकों व विद्यार्थियों की संभावनाओं को साकार करने में योगदान दे सके और अध्यापक व विद्यार्थी सामाजिक और पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ एवं न्यायसंगत समाज की स्थापना में योगदान दे सकें।

भारत पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण भारत में वर्षा और तापमान में परिवर्तन होने के आसार हैं (कृष्णन एवं अन्य, 2020)। इन अध्ययनों के मुताबिक, लगभग समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में तापमान में वृद्धि दिखाई देगी जबकि वर्षा रुझानों में इलाकों के हिसाब से फर्क दिखाई पड़ सकते हैं। अतिवर्षा और अस्वाभाविक रूप से ऊंचे तापमान जैसी कठोर स्थितियों में भी इजाफा होगा। दिन के मुकाबले रात के तापमान में भी उल्लेखनीय इजाफा होने की संभावना है (कुमार एवं अन्य, 2006)।

विशेषज्ञों का मानना है कि इन बदलावों से बहुत सारे क्षेत्रों पर असर पड़ेगा, जलवायु असंतुलन की वजह से पैदा हो रहे जोखिमों को बल मिलेगा तथा नए तरह की चुनौतियां पैदा होंगी। अनुमान लगाया जाता है कि जलवायु परिवर्तन से भारत के खाद्यान्न उत्पादन, जैव विविधता, पानी के भंडारों और रोजगारों पर बहुत विपरीत असर पड़ने वाला है। खुद को जलवायु बदलावों के अनुसार ढालने और उन बदलावों पर अंकुश लगाने के लिए पूरे देश को कदम उठाने होंगे और उनकी लागतें आर्थिक विकास की प्रक्रिया को भी चोट पहुंचाएंगी (साठे एवं अन्य, 2006)। जलवायु परिवर्तन से ऊर्जा, स्वास्थ्य, खाद्य एवं जल सुरक्षा, आवास और अवरचनागत सेवाओं से संबंधित टिकाऊ विकास लक्ष्यों (सस्टेनेबल डेवलेपमेंट गोल्स - एसडीजी) को हासिल करने की भारत की संभावनाओं पर भी नकारात्मक असर पड़ेगा। वर्षा और ग्लेशियरों में पविर्तन से सूखे और बाढ़ में वृद्धि हो सकती है जिससे आजीविका विकल्पों और पारिस्थितिकी तंत्र पर प्रभाव पड़ सकते हैं। गंभीर तूफानों, चक्रवातों और तटीय इलाकों में बाढ़ जैसी समस्याओं से पानी की उपलब्धता संकट में पड़ जाएगी, तटीय इलाकों में कई तरह के रोजगार खत्म हो जाएंगे और तटीय क्षेत्रों में रहने वाली विशाल आबादी के लिए नए खतरे पैदा हो जाएंगे (एमओईएफसीसी, 2018)।

आपदा की आशंका वाले इलाकों की श्रेणी में भारत काफी ऊपर के दर्जे पर आता है। भारत का लगभग 85% भूक्षेत्र किसी ना किसी तरह की आपदा की आशंकाओं से ग्रस्त है (एमओईएफसीसी, 2015)। 23 राज्यों और संघशासित प्रदेशों की 4.5 करोड़ हैक्टेयर से ज्यादा जमीन बाढ़ की आशंका से ग्रस्त है (उपरोक्त)। यदि औद्योगिक युग से पहले के तापमान की तुलना में वैश्विक तापमान में 1.5 डिग्री सेल्सियस की माध्य वृद्धि होती है तो आधे से अधिक दक्षिण एशिया में सूखा बढ़ जाएगा और फलस्वरूप 79 करोड़ से ज्यादा लोगों की आजीविका प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होगी (आधार एवं मिश्रा, 2009 19)। सन 1972 से 2004 के बीच सूखे की सघनता और बारंबारता में उल्लेखनीय इजाफा हो चुका है। अनुमान लगाया जा रहा है कि सूखे वाले क्षेत्र दक्षिण भारत के तटीय इलाकों, मध्य महाराष्ट्र और गंगा के मैदानों की तरफ खिसकते जाएंगे (माल्या एवं अन्य, 2015)। विशेषज्ञों का कहना है कि इस जलवायु परिवर्तन से खाद्यान्न उत्पादन पर विपरीत असर पड़ेगा क्योंकि पानी का संकट बढ़ता चला जाएगा। तापमान में प्रत्येक 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से प्रति हैक्टेयर गेहूं उत्पादन में 4-5 टन गिरावट आ सकती है (अग्रवाल, 2008)।

समुद्री जल स्तर के ऊपर उठने से बहुत सारे तटीय शहरों और इलाकों पर भी बुरा असर पड़ने वाला है। इसकी वजह से लोगों के पर्यावास नष्ट होंगे, कृषि भूमि प्रयोग में बदलाव आएंगे, पानी की निकासी में दिक्कत आएगी जिसकी वजह से भीतरी इलाकों में पहले से ज्यादा बाढ़ आने लगेंगी और भीतरी इलाकों में खारा पानी भी आने लगेगा (प्रमाणिक, 2017)।

जलवायु परिवर्तन के अब तक के अनुभवों से पता चलता है कि इसके कारण मौसम से पैदा होने वाले स्वास्थ्य खतरे बढ़ जाते हैं। मसलन, बार-बार शीत एवं ताप लहरी चलने लगती हैं, मलेरिया और डेंगू जैसी बीमारियां ज्यादा फैलने लगती हैं। जलवायु परिवर्तन की वजह से गर्मी के कारण होने वाली मौतों में भी उल्लेखनीय इजाफा होगा। अनुमान लगाया जाता है कि दिल्ली, अहमदाबाद, बेंगलूरू, मुंबई और कोलकाता जैसे महानगरों में यह वृद्धि सबसे ज्यादा इजाफा दिखाई देगी (ढोलकिया एवं अन्य, 2015)।

जलवायु परिवर्तन बहुत सारे क्षेत्रों को प्रभावित करेगा जिसकी वजह से एक विशाल आबादी और पर्यावरण व्यवस्था खतरे में पड़ जाएगी। लिहाजा भारत का हित इसी में है कि हम बेहतर वायुमंडल विज्ञान, बेहतर जलवायु परिवर्तन शिक्षा और संस्थागत क्षमता निर्माण के सहारे इन परिवर्तनों पर अंकुश लगाने और खुद को उनसे निपटने के लिए तैयार करें (साठे एवं अन्य, 2006)। भारत सरकार ने भी जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों को रेखांकित किया है और सरकार विभिन्न कार्यक्रमों और नीतियों के माध्यम से इन समस्याओं को हल करने का व्यवस्थागत ढंग से प्रयास कर रही है। नैशनल ऐक्शन प्लान ऑन क्लाइमेट चेंज (एनएपीसीसी) में खेती, पानी, हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र जैसे संवेदनशील पहलुओं पर ध्यान दिया गया है और सौर ऊर्जा, ऊर्जा कुशलता और टिकाऊ पर्यावास जैसे विकल्प अपनाने पर जोर दिया गया है। हमारा देश पेरिस वायुमंडल समझौते (पेरिस क्लाइमेट एग्रीमेंट) को लागू करने के लिए प्रतिबद्ध है मगर ये कोशिशें वैश्विक पूल से मिलने वाली आर्थिक सहायता और तकनीकी हस्तांतरण पर भी निर्भर करती हैं। भारत सरकार खेती और शहरी विकास जैसे संवेदनशील क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों पर अंकुश लगाने के लिए लगातार कोशिश कर रही है। इसी क्रम में राष्ट्रीय सौर मिशन जैसे कार्यक्रम भी बनाए गए हैं और कोअलीशन फॉर डिजास्टर (ऐण्ड क्लाइमेट) रेज़िलिएंट इन्फ्रास्ट्रक्चर (सीडीआरआई) जैसी व्यवस्थाएं विकसित की गई हैं।

जलवायु परिवर्तन एवं टिकाऊ विकास लक्ष्य (एसडीजी)

टिकाऊ विकास का लक्ष्य हासिल करने के रास्ते में जलवायु परिवर्तन सबसे गंभीर खतरा दिखाई पड़ता है। आईपीसीसी ने अपनी ऐतिहासिक स्पेशल रिपोर्ट में बताया है कि यदि वैश्विक तापमान वृद्धि 1.5 डिग्री सेल्सियस माध्य सीमा से पार हो जाती है तो जलवायु परिवर्तन से करोड़ों लोगों की खाद्य एवं जल सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी, ताप एवं शीत लहरी, सूखा, बाढ़, तूफान जैसे संकट पैदा हो सकते हैं। 2030 के दशक तक हमें खुद को इन स्थितियों के लिए तैयार करने और इन बदलावों पर अंकुश लगाने के रास्ते ढूंढने होंगे। इसके लिए हमें अपने उत्सर्जन में भी 50 प्रतिशत कटौती करना होगी। एक ऐसे देश में ये आसान काम नहीं है जहां ऊर्जा निर्धनता से कई करोड़ लोगों पर असर पड़ेगा। इसके बावजूद, भारत के बहुत सारे इलाके स्थानीय स्तर पर इस दहलीज को पार कर चुके हैं और कई जगह जलवायु परिवर्तन के ऐसे प्रभाव दिखाई पड़ने लगे हैं जो कई टिकाऊ विकास लक्ष्यों तक पहुंचने की संभावना को कुंद कर रहे हैं। आईपीसीसी का कहना है कि जलवायु परिवर्तन पर अंकुश लगाने के लिए शिक्षा और जागरूकता सबसे महत्वपूर्ण साधन हैं।

जलवायु परिवर्तन पर अंकुश का लगभग सभी टिकाऊ विकास लक्ष्यों के साथ बहुत गहरा संबंध दिखाई देता है। लिहाजा, हमें एसडीजी क्रियान्वयन और जलवायु कार्यवाइयों के बीच एक समन्वय स्थापित करना चाहिए। क्लाइमेट एक्शन पर केंद्रित लक्ष्य 13 के बिंदु 13.3 में जलवायु परिवर्तन शिक्षा का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है और आह्वाहन किया गया है कि 'जलवायु परिवर्तन पर अंकुश, उसकी तैयारी, प्रभावों की रोकथाम और समय रहते चेतावनी की मानवीय एवं संस्थागत क्षमता, जागरूकता और बेहतर शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए।' लक्ष्य 7, 8, 11, 12, 13, 14 और 15 जैसे कुछ लक्ष्य क्लाइमेट एक्शन तथा एसडीजी क्रियान्वयन के बीच समन्वय के क्षेत्रों की तरफ इंगित करते हैं और लिहाजा इन्हें जलवायु परिवर्तन शिक्षा (क्लाइमेट चेंज एजुकेशन - सीसीई) की प्राथमिकता का क्षेत्र बनाया जा सकता है। एक समग्र सीसीई पाठ्यचर्या की रूपरेखा विकास के नाना आयामों को दैनंदिन अनुभवों और संदर्भों के साथ जोड़ने में मदद दे सकती है और सिद्धांत व व्यवहार, पाठ एवं अनुभव, स्थानीय बनाम वैश्विक ज्ञान की बाइनरीज़ को तोड़ने में और इन्हें सामाजिक, पर्यावरणीय एवं ज्ञानात्मक न्याय की धुरियों पर केंद्रित करने में मदद दे सकती है।

यह तभी संभव हो सकता है जब पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र की फिर से कल्पना की जाए और शिक्षक ऐसे स्थानीय मुद्दों और समाधानों की पड़ताल करें जो जलवायु जोखिम को कई एसडीजी लक्ष्यों से जोड़ते हैं। इसके लिए जलवायु एडेप्टेशन एवं रोकथाम की जरूरतों को पूरा करने के लिए हमें स्थानीय स्तर पर नए रास्ते ढूंढने होंगे, क्रियान्वयन योग्य समाधान विकसित करने होंगे और उन्हें एसडीजी के क्रियान्वयन के साथ जोड़ना होगा।

भारत में जलवायु परिवर्तन शिक्षा

ग्लोबल क्लाइमेट रिस्क इंडेक्स 2020 (ऐक्स्टाइन एवं अन्य, 2020) के मुताबिक जलवायु परिवर्तन के खतरों की आशंका के लिहाज से भारत दुनिया के पहले पांच देशों में आता है। पिछले दो दशकों के दौरान पूरे देश में चरम मौसम वाली घटनाओं की बारंबारता और गंभीरता में इजाफा हुआ है। भारत में पुनर्नवीकरणीय सौर एवं वायु ऊर्जा से लेकर आपदा प्रबंधन तक तरह-तरह के जलवायु समाधान भी लागू किए गए हैं हालांकि कोयला आधारित विद्युत उत्पादन पर अभी भी खूब जोर दिया जा रहा है। लिहाजा, हमारे पास अपने अतीत की विफलताओं और सफलताओं से सीखने और आगामी दशक में ऊर्जा, उद्योग,

भूमि, समुद्र एवं पारिस्थितिकी तंत्र पर केंद्रित चारों प्रमुख व्यवस्थागत रूपांतरणों की तैयारी करने का भरपूर अवसर है। इसके अलावा हम शहरी एवं बुनियादी ढांचे, जिसका आईपीसीसी में उल्लेख किया गया है, को भी तैयार कर सकते हैं (मेसन-डेलमॉट एवं अन्य, 2018)।

इस दौरान ऐसे नागरिकों, प्रेक्टिशनर्स एवं नीति निर्माताओं की नई कतार तैयार करने में शिक्षा एक अहम भूमिका अदा कर सकती है जो जलवायु परिवर्तन संबंधी कार्रवाइयों को और तेजी दे सकते हैं। शिक्षा उन सकारात्मक स्थितियों को भी मजबूती दे सकती है जिनके तहत ये नाटकीय परिवर्तन संभव होंगे, जिसका मानव इतिहास में कोई उदाहरण नहीं है।

जोखिमों और समाधानों पर केंद्रित शिक्षा, लर्निंग और जागरूकता, ये जलवायु परिवर्तन से निपटने की कुंजी हैं (मोजूकी एवं ब्रायन 2015; ऐन्डरसन, 2012)। जलवायु परिवर्तन शिक्षा (सीसीई) से कौशल, रवैये एवं व्यवहार में बदलाव लाया जा सकता है, व्यक्तिगत परितर्वन और सामाजिक रूपांतरण को दिशा दी जा सकती है (फ़ेसर एवं अन्य 2020, ओ'ब्रायन एवं लीचिंको 2019)। हालांकि सीसीई मोटे तौर पर टिकाऊ विकास हेतु शिक्षा (एजुकेशन फॉर सस्टेनेबल डेवलेपमेंट - ईएसडी) के दायरे में आती है मगर अब कुछ लोग ये भी कहने लगे हैं कि हमें जलवायु परिवर्तन पर और ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है (मोजूकी एवं ब्रायन, 2015)।

जलवायु कार्यवाइयों के व्यवस्थागत स्वरूप के चलते सीसीई अंतर्निहित रूप से बहुआयामी और अंतरअनुशासनात्मक प्रक्रिया होगी जिसके लिए औपचारिक व अनौपचारिक सभी प्रकार की ज्ञान व्यवस्थाओं के बीच सहयोग व समन्वय की आवश्यकता है। इसके लिए स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक, सभी स्तरों पर प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च एवं सतत् शिक्षा आदि अलग-अलग शैक्षिक स्तरों व पद्धतियों में काम करना होगा (ऐन्डरसन, 2012)। जलवायु परिवर्तन पाठ्यचर्या में देशज एवं स्थानीय ज्ञान को जगह देने पर हमें खासतौर से ध्यान देना होगा ताकि स्थानीय स्तर पर उपयोगी, सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील और लगातार फैलते ज्ञान व समाधान विकसित किए जा सकें (प्रियदर्शिनी एवं अभिलाष, 2019)। एक प्रभावी सीसीई शिक्षा के लिए हमें स्कूली व विश्वविद्यालयी, सभी स्तरों पर औपचारिक शैक्षिक कार्यक्रमों को अनौपचारिक प्रक्रियाओं व ज्ञान तक फैलाना होगा। उनमें व्यापक जागरूकता अभियानों और स्थानीय ज्ञान व्यवस्थाओं का समावेश करना होगा। प्राकृतिक व्यवस्थाओं तथा कृषि, पशुपालन, वानिकी एवं मत्स्य विकास संबंधी रोजगारों और संस्कृतियों को इन संकटों के अनुरूप ढालना होगा क्योंकि ये सभी पारिस्थितकीय तंत्र से गहरे तौर पर जुड़े होते हैं। इस ढंग से यह शिक्षा विकास एवं वायुमंडल को दैनिक जीवन और आजीविकाओं से जोड़ सकती है। विकास की अलग-अलग धाराओं के लिए उत्तरदायी पेशेवरों और लोक अधिकारियों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए ताकि स्कूली व उच्च शिक्षा में औपचारिक टीचिंग-लर्निंग और अंतरअनुशासनात्मक समस्या समाधान व ज्ञान सृजन की संभावनाएं बढ़ती जाएं।

जलवायु परिवर्तन और एसडीजी लक्ष्यों के संबंधों की जांच करके भारत की शिक्षा व्यवस्था में सीसीई समावेश के लिए संभावित बिंदुओं की पड़ताल की गई है और देशज एवं स्थानीय ज्ञान के साथ गहरे संबंध विकसित करने पर भी ध्यान दिया जा रहा है।

जलवायु परिवर्तन को शिक्षा में समाहित करने की जरूरत

भारत की संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति (भारत सरकार, 2020) में जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरणीय मुद्दों को एसडीजी लक्ष्यों के प्रति भारत की प्रतिबद्धता के प्रसंग में व्यक्त किया गया है। इस दस्तावेज के अनुसार, "विद्यार्थियों को वैश्विक मुद्दों से परिचित कराने तथा शांतिपूर्ण, सहिष्णु, समावेशी, सुरक्षित एवं टिकाऊ समाजों को बढ़ावा देने के लिए" ये लक्ष्य गहरा महत्व रखते हैं (भारत सरकार, 2020, पृष्ठ 37)। इसमें विभिन्न अनुशासनों (जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिकी, कृषि, जलवायु विज्ञान आदि) तथा मूल्य आधारित "समग्र एवं बहुअनुशासनात्मक" सीसीई की जरूरत को परस्परी जोड़कर दिखाया गया है और यह नीति "लचीली एवं अभिनव पाठ्यचर्याओं" की संभावना पर आश्रित दिखाई देती है। मगर, इस नीति में भी उच्च शिक्षा संस्थानों में सीसीई को समाहित करने के लिए कोई ठोस व्यवस्था नहीं है। विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर सीसीई को अनिवार्य बनाने की भी कोई ऐसी व्यवस्था नहीं की गई है जैसी सर्वोच्च न्यायालय के माध्यम से आपदा प्रबंधन के विषय में की गई थी। सीसीई को शिक्षा के चारों स्तरों - स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा, शिक्षक शिक्षा एवं सतत् शिक्षा - में समाहित करना जरूरी है। साथ ही ये भी ध्यान में रखना होगा कि इन चारों स्तरों पर देशज एवं स्थानीय ज्ञान को भी पूरी जगह मिले।

स्कूली शिक्षा

केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) ने पर्यावरण शिक्षा को कक्षा 1 से कक्षा 12 तक के लिए अनिवार्य घोषित किया है (सीबीएसई, 2005)। इसमें सीसीई पर कोई स्पष्ट फोकस नहीं है।

मुट्ठी भर स्वैच्छिक संगठन (एनजीओ), लाभ-निरपेक्ष संस्थाएं (एनपीओ) और अन्य गैर-सरकारी संस्थाएं स्कूलों में पर्यावरण एवं जलवायु शिक्षा के क्षेत्र में इस कमी को दूर करने के लिए कोशिशें कर रही हैं। औपचारिक पाठ्यचर्या के बाहर उन्होंने जलवायु परिवर्तन एवं संबंधित कार्रवाइयों पर अभिनव कार्यक्रम एवं पाठ्यक्रम तैयार किए हैं। उदाहरण के लिए, सीएसई के हरित विद्यालय कार्यक्रम में पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन एवं टिकाऊ विकास पर विषयवार जोर दिया जाता रहा है। खेद का विषय है कि फिलहाल यह पाठ्यक्रम भारत के 15 लाख स्कूलों में से केवल मुट्ठी भर स्कूलों में ही पढ़ाया जा रहा है।

भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) तथा पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (एमओईएफसीसी) ने स्कूली बच्चों में जलवायु परिवर्तन पर जागरूकता पैदा करने के लिए साइंस एक्सप्रेस-क्लाइमेट ऐक्शन स्पेशल नाम से एक मोबाइल प्रदर्शनी भी आयोजित की है।

सीएसई का हरित विद्यालय कार्यक्रम (ग्रीन स्कूल प्रोग्राम) : यह एक पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम है जो विद्यार्थियों को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाने की कोशिश करता है। इस कार्यक्रम में ऐसी गतिविधियां कराई जाती हैं जिनसे बच्चों में पर्यावरण के सवाल पर सोचने की प्रक्रिया शुरू होती है। यह एक पर्यावरण प्रबंधन व्यवस्था भी है जो विद्यार्थियों के माध्यम से स्कूल परिसरों में प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग का ऑडिट करती है और स्कूलों को इसके लिए सहायता देती है कि मूल्यवान संसाधनों की बर्बादी रोक कर स्कूल भी पर्यावरण के अच्छे प्रबंधक बनें।

हरित विद्यालय कार्यक्रम के कुछ नतीजे : विद्यार्थियों को इसके लिए तैयार करना कि वे जिम्मेदारी के साथ, कुशलतापूर्वक संसाधनों का प्रयोग करें और टिकाऊ जीवनशैली अपनाएं। इस कार्यक्रम में स्कूली बुनियादी ढांचे और पाठ्यचर्या में दीर्घकालिक नीतिगत बदलावों के लिए केंद्रीय एवं राज्य सरकारों के उपयोग हेतु विश्वसनीय डेटाबेस भी तैयार किए गए हैं। हरित विद्यालय कार्यक्रम स्कूलों को संसाधनों के कुशल प्रयोग के लिए भी मदद देता है ताकि वे ऊर्जा का किफायत के साथ इस्तेमाल कर सकें, कम से कम कूड़ा पैदा करें और पानी के संचय व रीसाइक्लिंग का विकल्प अपनाएं।

उच्च शिक्षा

साल 2003 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) ने सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों के सभी विभागों में स्नातक विद्यार्थियों के लिए पर्यावरण अध्ययन पर छह महीने का एक अनिवार्य कोर्स लागू किया था (यूजीसी, 2003)। इसके अलावा कुछ ऐसे स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम भी हैं जो खासतौर से जलवायु परिवर्तन एवं संबंधित विषयों पर ही जोर देते हैं। ये कोर्स भी कई विश्वविद्यालयों में उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साईंसेज़ (टिस) में क्लाइमेट चेंज ऐण्ड सस्टेनेबिलिटी स्टडीज़, दि एनर्जी ऐण्ड रीसोर्सेज़ इंस्टीट्यूट (टेरी) में वायुमंडल विज्ञान एवं नीति इसी तरह के पाठ्यक्रम हैं। इनके अलावा पर्यावरण अध्ययन, टिकाऊ विकास और पुनर्नवीकरणीय ऊर्जा जैसे संबंधित विषयों में भी कई जगह स्नातकोत्तर एवं पीएचडी शोध कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं

सीईई इंडिया : मैनेजमेंट एजुकेशन सेंटर ऑन क्लाइमेट चेंज (एमईसीसीसी) की स्थापना गुजरात विश्वविद्यालय के साथ मिलकर की गई थी। जलवायु परिवर्तन एवं तकनीकी व सामाजिक कौशलों से संबंधित ज्ञान को बढ़ावा देना, तथा जलवायु परिवर्तन पर अंकुश और उसके परिणामों से निपटने की तैयारी करना इस सेंटर की स्थापना का मुख्य उद्देश्य था। जलवायु परिवर्तन प्रभाव प्रबंधन पर केंद्रित इस एमएससी पाठ्यक्रम को विभिन्न पृष्ठभूमियों के विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर तैयार किया गया था ताकि उन्हें जलवायु विज्ञान के बारे में ज्ञान प्रदान किया जा सके, जलवायु परिवर्तन से प्राकृतिक एवं सामाजिक-आर्थिक विकास पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में सचेत किया जा सके और उसके परिणामों से निपटने की तैयारी और परिवर्तन पर अंकुश के लिए विभिन्न समाधान विकसित किए जा सकें। इस पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किए गए नीतिगत प्रावधानों और टिकाऊ विकास एवं वायुमंडल सुरक्षा के प्रति लोगों के योगदान के बारे में भी जानकारी दी जाती है।

भूगोल, जलवायु विज्ञान, विकास अध्ययन जैसे अलग-अलग अनुशासनों तथा इंजीनियरिंग एवं जल संसाधन प्रबंधन जैसे तकनीकी क्षेत्रों में भी जलवायु परिवर्तन पर केंद्रित पूर्णकालिक या अंशकालिक कार्यक्रम उपलब्ध हैं।

दिल्ली विश्वविद्यालय में स्कूल ऑफ क्लाइमेट चेंज ऐण्ड सस्टेनेबिलिटी की ओर से की गई घोषणाएं जलवायु परिवर्तन केंद्रित उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एक नई शुरुआत हैं। उम्मीद की जाती है कि यह संस्थान विद्यार्थियों को जलवायु परिवर्तन एवं टिकाऊ विकास की चुनौतियों को संबोधित करने के लिए प्रशिक्षण देगा। फिलहाल यह स्पष्ट नहीं है कि यह केंद्र सिद्धांत और व्यवहार के फासले को पाटने, सामाजिक-तकनीकी बनाम सामाजिक-पारिस्थितिकीय बदलाव के फासले को पाटने और न्याय की पात्रता जैसे विवादों को संबोधित करने के लिए किस तरह आगे बढ़ेगा। ये भी स्पष्ट नहीं है कि किन चीजों को महत्व दिया जाएगा और उन्हें लोकतंत्र के दैनंदिन व्यवहार में समाहित करने के लिए यह सेंटर किस तरह योगदान देगा।

आईआईएचएस का अर्बन प्रेक्टिशनर्स प्रोग्राम (यूपीपी) : यह आईआईएचएस का वरिष्ठ अधिकारियों, कुछ वर्ष पुराने एवं नए सरकारी अधिकारियों के सेवाकालीन शिक्षा एवं प्रशिक्षण का कार्यक्रम है। इसमें विभिन्न विषयों और स्तरों पर काम करने वाली सार्वजनिक, निजी, अकादमिक एवं नागर समाज संस्थाओं के लोगों को भी शिक्षित व प्रशिक्षित किया जाएगा। यूपीपी पोर्टफोलियो में कई प्रकार के शहरी टिकाऊपन व्यवहारों का समावेश किया गया है और यह शहरी चुनौतियों के लिए एक दीर्घकालिक नजरिया पेश करता है, इस तरह की चुनौतियों को समझने के लिए उचित ज्ञान रूपरेखा मुहैया कराता है और प्रभावी व टिकाऊ समाधान विकसित करने पर जोर देता है।

यूपीपी कार्यक्रम में जलवायु परिवर्तन (एसडीजी 13), शहरी टिकाऊपन (एसडीजी 11), गरीबी असमानता (एसडीजी 1 एवं एसडीजी 10), और टिकाऊ जल प्रबंधन (एसडीजी 6) पर साक्ष्य आधारित एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके लिए पर्यावरणीय टिकाऊपन, मानवीय कुशलक्षेम एवं सामाजिक समता पर आश्रित व्यवस्थागत रूपरेखा का प्रयोग किया जाता है।

सतत शिक्षा

कैरियर के मध्य में या सतत शिक्षा के रूप में पेशेवरों के लिए जलवायु परिवर्तन शिक्षा के भी कुछ उदाहरण मौजूद हैं। सीईई द्वारा चलाया जा रहा पेशेवर एवं अल्पकालिक प्रशिक्षण एवं क्षमतावर्धन कार्यक्रम इसका एक उदाहरण है। यह कार्यक्रम पर्यावरण एवं टिकाऊ विकास के मुद्दों पर चलाया जाता है। इस क्षेत्र में से मुख्य मुद्दे ये रहे हैं :

- *टिकाऊ विकास हेतु शिक्षा एवं संचार प्रशिक्षण (ट्रेनिंग इन एजुकेशन ऐण्ड कम्युनिकेशन फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट) :* यह तीन माह का कार्यक्रम है जो दुनिया भर में सेवारत प्रोफेशनल्स के लिए उपलब्ध है।
- पर्यावरण पत्रकारिता जैसे विषयों पर अलग-अलग क्षेत्रों में काम करने वाले प्रोफेशनल्स के लिए भी विभिन्न प्रकार के दूर-शिक्षा कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।
- टीच ऐण्ड लर्न एन्वायर्नमेंटल एजुकेशन मॉड्यूल्स (तालीम) ऐसे अल्पकालिक मॉड्यूल्स होते हैं जिनमें शिक्षकों, प्रोफेशनल्स और पर्यावरण व विकास के क्षेत्र में सक्रिय वॉलंटियर्स के लिए अलग-अलग विषयों पर जोर दिया जाता है।
- 'ईई प्रोसेसेज़ इन फॉरमल एजुकेशन सिस्टम्स' एशिया और अफ्रीका में पर्यावरण के क्षेत्र में काम कर रहे सेवारत प्रोफेशनल्स के लिए एक उन्नत अंतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यक्रम है।

भारत सरकार ने भी कुछ वोकेशनल प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये हैं जिनमें कई तरह के लक्ष्यों को समाहित किया गया है (जैसे सम्मानजनक श्रम एवं आर्थिक उन्नति पर केंद्रित एसडीजी 8, और जलवायु परिवर्तन पर केंद्रित एसडीजी 13)। 'ग्रीन स्किल्स डेवलपमेंट प्रोग्राम' (हरित कौशल विकास कार्यक्रम - जीएसडीपी) के तहत 2018-2020 के बीच पांच लाख से ज्यादा लोगों को प्रशिक्षण देने की योजना बनाई गई है ताकि उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (नैशनली डिटरमिन्ड कॉन्ट्रिब्यूशंस - एनडीसी), टिकाऊ विकास लक्ष्यों (एसडीजी), राष्ट्रीय जैवविविधता लक्ष्य (नैशनल बायोडायवर्सिटी टारगेट - एनबीटी) तथा कचरा प्रबंधन नियमावली (2016) के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए तकनीकी ज्ञान व प्रतिबद्धता प्रदान की जा सके।

पर्यावरण अनुकूल एवं हरित रोजगार पैदा करने वाले मेन्युफेक्चर्स व सेवा प्रदाताओं की सहायता के लिए साल 2015 में भारत सरकार ने स्किल काउंसिल फॉर ग्रीन जॉब्स (हरित रोजगार कौशल परिषद - एससीजीजे) की भी शुरुआत की थी। हरित

रोजगारों में परंपरागत क्षेत्र के रोजगार (जैसे मेन्युफेक्चरिंग, निर्माण) भी आते हैं और नए क्षेत्रों (जैसे पुनर्नवीकरणीय ऊर्जा एवं ऊर्जा कुशल भवन निर्माण) के रोजगार भी आते हैं जिनसे पर्यावरण की रक्षा और बहाली तथा टिकाऊ लक्ष्यों को हासिल करने में मदद मिलती है (एससीजीजे, 2020)। इन पहलकदमियों का एसडीजी 8 (सम्मानजनक रोजगार एवं आर्थिक उन्नति), एसडीजी 7 (किफायती एवं स्वच्छ ऊर्जा), एसडीजी 9 (उद्योग, आविष्कार एवं बुनियादी ढांचा), तथा एसडीजी 12 (उत्तरदायित्वपूर्ण उपभोग एवं उत्पादन) जैसे टिकाऊ विकास लक्ष्यों के साथ गहरा संबंध दिखाई पड़ता है।

देशज एवं स्थानीय ज्ञान

खुद को जलवायु परिवर्तनों के अनुरूप ढालने और एसडीजी लक्ष्यों को पूरा करने में देशज एवं स्थानीय ज्ञान एक महत्वपूर्ण और केंद्रीय भूमिका अदा करता है। भारत में उपलब्ध परंपरागत ज्ञान की एक विस्तृत समीक्षा के आधार पर प्रियदर्शिनी एवं अभिलाष (2019) का निष्कर्ष है कि देशज एवं स्थानीय ज्ञान से पोषण सुरक्षा, जैव विविधता एवं जल प्रबंधन, आपदा जोखिम प्रबंधन, टिकाऊ खेती और बीज संरक्षण के साथ-साथ वैज्ञानिक ज्ञान के सृजन व उपयोग में भी काफी मदद मिल सकती है। इसका एसडीजी 1, 2, 3, 4, 8, 13, 15 और 17 के साथ गहरा समन्वय दिखाई देता है।

"स्कूली पाठ्यचर्या में 'देशज ज्ञान' के समावेशन के प्रति बढ़ती सरकारी दिलचस्पी" (सारंगपाणी 2003, पृष्ठ 200) के बावजूद सीसीई में आईएलके को समाहित करने के लिए औपचारिक धरातल पर कोई शैक्षिक नीति और प्रयास दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। इस रास्ते में फिलहाल एक मुख्य रुकावट ये दिखाई पड़ती है कि देशी समुदायों का मौखिक ज्ञान और औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की लिखित पाठ आधारित व्यवहार व संरचनाएं एक-दूसरे से मेल नहीं खातीं (सारंगपाणी, 2003)। मगर, जलवायु परिवर्तन के व्यवहार और शोध में एक छोटा-सा मगर फैलता आंदोलन ऐसे लोगों का भी है जो नाना प्रकार की ज्ञान व्यवस्थाओं को साथ लेकर समाधान ढूंढने की कोशिश कर रहे हैं।

- कृषि विज्ञान केंद्र और गैर-सरकारी संगठन (एनजीओ) किसानों को जलवायु परिवर्तन के प्रति आगाह करने और बढ़ते जोखिमों से निपटने की उनकी क्षमता बढ़ाने के लिए प्रयास कर रहे हैं।
- अलग-अलग क्लाइमेट हॉटस्पाट्स में जल प्रबंधन की परंपरागत पद्धतियों को बहाल करने के लिए भी कई प्रयास किए जा रहे हैं। जैसे, लाहौल में प्रज्ञा नामक संस्था कुहुल यानी पानी की परंपरागत नालियों का पुनर्निर्माण कर रही है, पहले सिंचाई के लिए पानी को खेतों तक पहुंचाने के वास्ते ये नालियां प्राकृतिक ढलानों के साथ आगे बढ़ती थीं। इसी प्रकार, तरुण भगत संघ अलवर, राजस्थान में परंपरागत जल संरक्षण व्यवस्था (जोहड़ों) को पुनर्जीवित करने में लगा है। नीलगिरि बायोस्फ़ीयर रिज़र्व में कीस्टोन फाउंडेशन देशी टिकाऊ संरक्षण पद्धतियों को पुनर्जीवित करने के लिए प्रयास कर रहा है।

इन कोशिशों से पता चलता है कि यदि अलग-अलग प्रकार की ज्ञान व्यवस्थाओं का सहारा लिया जाए तो जलवायु समाधानों का दायरा भी फैलाया जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि हम अपनी पाठ्यचर्या, शिक्षकों की बौद्धिक भूमिका (एजेंसी) को विस्तार दें और अभिनव शिक्षाशास्त्रीय पद्धतियां अपनाएं।

जलवायु परिवर्तन शिक्षा के क्षेत्र में संभावित शोध विषय

इस क्षेत्र में कुछ संभावित शोध बिंदु ये हो सकते हैं :

- टिकाऊ विकास, आपदा जोखिम अंकुश और जलवायु कार्रवाइयों के बीच राष्ट्रीय, प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय स्तरों पर किस तरह समन्वय विकसित किया जाए और ऐसे कौन से मुख्य पात्र और व्यवस्थागत बदलाव हैं जो भारतीय एवं वैश्विक विकास की कार्यसूचियों के लिए प्रासंगिक हैं।
- पर्यावरणीय, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की चुनौतियों को संबोधित करने के लिए व्यवहार एवं ज्ञान आधारित पारस्परिक संबंध विकसित करने तथा सामाजिक रूपांतरण के सवालों को संबोधित करने के लिए जलवायु परिवर्तन शिक्षा की संभावनाओं का अध्ययन करना।
- जलवायु अनुकूलन से संबंधित स्थानीय एवं देशी ज्ञान को जलवायु, टिकाऊपन एवं शहरी विज्ञान के साथ जोड़ने और टीचिंग-लर्निंग वातावरण में उनको साकार करने की संभावनाओं का अध्ययन करना।
- शिक्षक-शिक्षकों, प्रेक्टिशनरों, मेंटरों एवं विद्यार्थियों को जलवायु परिवर्तन शिक्षा प्रदान करना एवं ईएसडी पर उनकी क्षमताओं व समझ की कमियों को चिन्हित करना और उन कमियों को दूर करने के लिए उचित पद्धतियां व प्रणालियां

विकसित करना। इसमें ज्ञान, पाठ्यचर्यात्मक रूपरेखा और शिक्षाशास्त्रीय पद्धतियों में व्यवहार आधारित अनुभवों व निष्कर्षों का सदुपयोग करना भी शामिल है।

टिकाऊ शहरों एवं समुदायों के लिए शिक्षा

मानव समाजों के इतिहास में शहरीकरण की सबसे बड़ी लहर अगले कुछ दशकों के दौरान भारत में दिखाई देगी। इस दौरान भारत की शहरी आबादी 45 करोड़ से बढ़कर 70 करोड़ तक पहुंच जाएगी। यह मानव इतिहास में शहरीकरण के सबसे बड़े चीनी अनुभव से भी बड़ा परिवर्तन होगा (संयुक्त राष्ट्र, 2019)। इस प्रकार, इक्कीसवीं शताब्दी के मध्य तक वैश्विक आबादी में शहरी आबादी का हिस्सा बदल जाएगा। इससे एशिया और अफ्रीका, खासतौर से भारत में शहरों की आर्थिक उत्पादन क्षमता, रोजगार और निवेश की क्षमताओं में भी बदलाव आएगा।

यदि इस प्रक्रिया के साथ-साथ शहरी गरीबी और गैर-बराबरी की पहले से चली आ रही चुनौतियों व समस्याओं को संबोधित करने का प्रयास किया जाए तो यह दुनिया में टिकाऊ शहरीकरण का अब तक का सबसे बड़ा अवसर साबित हो सकता है। इसके लिए हमें हर साल एक करोड़ से ज्यादा लोगों को टिकाऊ रोजगार देने होंगे, सार्वभौमिक खाद्य सुरक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करनी होगी, सार्वभौमिक स्वास्थ्य व्यवस्था एवं शिक्षा तक पहुंच प्रदान करनी होगी, पर्याप्त एवं सुरक्षित आवास बनाने होंगे, और इस बढ़ती शहरी आबादी को पानी, स्वच्छता, स्वच्छ ऊर्जा, लोक परिवहन एवं दूरसंचार की न्यूनतम सुविधाएं भी देनी होंगी।

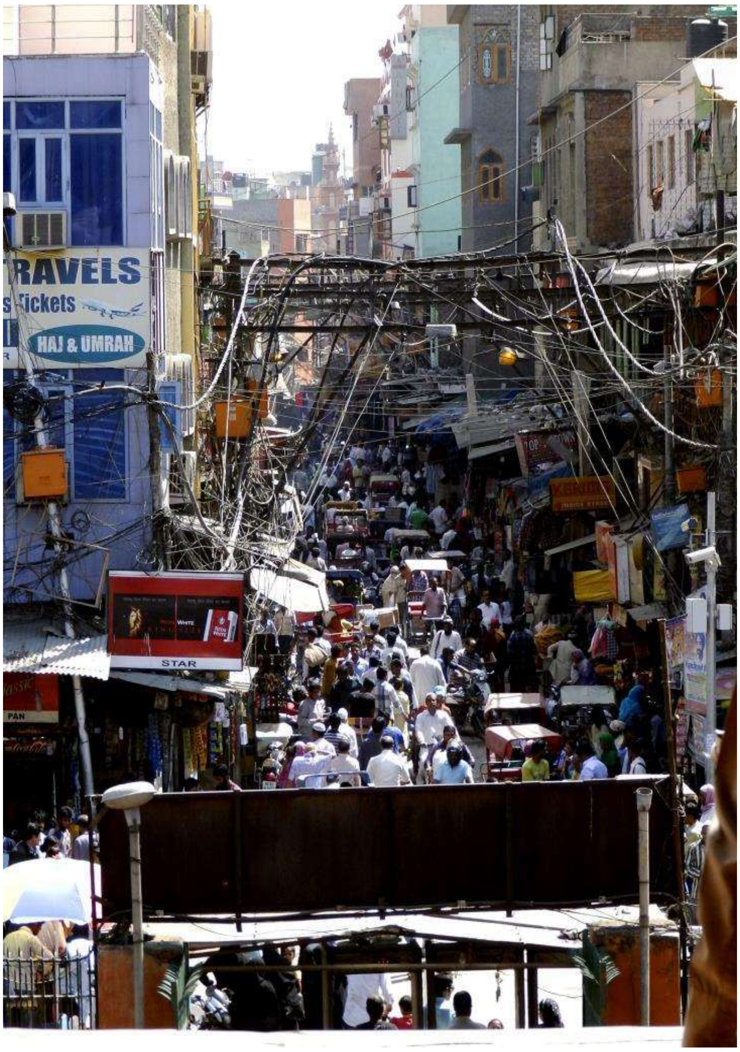

शहरीकरण की इस विशाल परिघटना में भारत के 8,000 से ज्यादा नगरों एवं 10 लाख से अधिक आबादी वाले महानगरों, छोटे कस्बों और गांवों में एसडीजी और न्यू अरबन एजेंडा को लागू करना एक बहुत महत्वपूर्ण कार्यभार होगा। मगर, फिलहाल राष्ट्रीय स्तर पर एवं अलग-अलग राज्यों के बीच इस मद में बहुत भारी फासले दिखाई दे रहे हैं (रेवी एवं अन्य, 2019)।

बीसवीं शताब्दी के शुरुआती सालों से भारत की मध्यम से उच्च वृद्धि दर तथा औसत बचत व निवेश दर - जिसमें शहरी इलाकों का बड़ा योगदान है - से इस तरह के रूपांतरण को और गति मिलनी चाहिए। मगर दूसरी ओर, आय एवं संपत्ति असमानता, जाति, लिंग, धर्म एवं नृजातीयता के स्तर पर सामाजिक गैर-बराबरी, और ज्यादातर स्थानों पर अभावों और टकरावों में इजाफा होता दिखाई दे रहा है (बजाज एवं अन्य, 2016)।

भारत के शहरी इलाकों की तस्वीर बहुत पेचीदा है। यहां तरह-तरह के जोखिम और जलवायु असंतुलन की स्थितियां दिखाई पड़ती हैं। ज्यादातर शहरों में आबादी का एक बड़ा हिस्सा चरम विपन्नता की स्थिति में जीवनयापन करता है। ये लोग दैनिक स्तर पर तो बेहद असुरक्षित जीवन जीते ही हैं, अकसर आपदाओं की भी आशंका में रहते हैं। शहरों में अकसर बाढ़ आने और गंदगी की निकासी न होने से पर्यावरणीय जोखिम भी प्रायः गंभीर रूप ले लेते हैं क्योंकि शहरीकरण की प्रक्रिया अकसर योजना के अनुसार नहीं चलती (जैन एवं अन्य, 2014)। बाजार के बेदखली बढ़ाने वाले तौर-तरीके और किसी भी तरह की सुरक्षाओं से वंचित श्रम बाजार ने शहरी गरीबों और हाशियाई समुदायों की करोड़ों की आबादी को बहुत ही असुरक्षित परिस्थितियों में धकेल दिया है। कोविड-19 महामारी और लॉकडाउन के दौरान हमें ये दोनों संकट साफ देखने को मिले।

ये सब कुछ एक विखंडित और निरंतर विवादों को जन्म देने वाली अभिशासन प्रक्रिया का नतीजा है जिसमें लोकतांत्रिक सक्रियता, स्थानीय अभिशासकीय स्वायत्तता और नागरिकों की हिस्सेदारी के लिए लगभग कोई गुंजाइश नहीं होती। स्थानीय निकायों को 25 साल से भी ज्यादा पहले दी गई संवैधानिक स्वीकृति के बावजूद इस अभिशासन व्यवस्था में इन निकायों की संस्थागत क्षमता बहुत कम है, वे गहरे आर्थिक संकट में हैं और राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक सरकारें उन्हें जरूरत के हिसाब से अनुदान भी मुहैया नहीं करातीं। ये सब कुछ तब है जबकि पिछले दो दशकों के दौरान राष्ट्रीय नीति और लोक कार्यक्रमों में शहरों की तरफ झुकाव साफ दिखाई पड़ रहा है और पिछले एक दशक के दौरान शहरी पुनर्नवीकरण, आवास एवं बुनियादी ढांचे में बड़े पैमाने पर निवेश भी किया जा रहा है।

दूसरी तरफ संसाधनों के उपभोग में इजाफा हो रहा है, 'गंदी' और कायदे-कानूनों से आजाद उत्पादन व्यवस्थाओं में भी तेजी से फैलाव आ रहा है जिनकी वजह से शहरों में चौतरफा कचरा व प्रदूषण बढ़ा है। इसकी वजह से शहरी पर्यावरण में गंभीर गिरावट आई है, जोखिम बढ़े हैं और जलवायु परिवर्तन के असर गंभीर हो गए हैं। पिछले दो दशकों के दौरान शहरों में हवा और पानी की गुणवत्ता लगातार गिरती गई है जो भारत में एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य संकट बनता जा रहा है। ठोस कचरा प्रबंधन की समस्या लगातार कठिन होती जा रही है। इन सारी समस्याओं को साथ रखकर देखने पर पता चलता है कि इससे जमीनी, जलीय एवं समुद्री पारिस्थितिकी तंत्रों पर गहरा असर पड़ने लगा है। ग्रीन हाउस गैसों में भी इजाफा हुआ है हालांकि भारत में ग्रीन हाउस गैसों का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन विकसित देशों के मुकाबले अभी भी काफी कम है।

फिलहाल भारत की एक तिहाई आबादी शहरी और दो तिहाई आबादी ग्रामीण इलाकों में रहती है। अनुमाना लगाया जाता है कि 2050 तक दोनों क्षेत्रों में एक समान आबादी होगी हालांकि ज्यादातर आर्थिक उत्पादन और रोजगार वृद्धि शहरी इलाकों में केंद्रित हो चुकी होगी। इस प्रकार, दुनिया के बहुत सारे दूसरे भागों के विपरीत भारत के शहरी एवं ग्रामीण इलाकों के बीच जो क्षेत्रीय संबंध है वह भी एसडीजी लक्ष्यों के क्रियान्वयन के लिए महत्वपूर्ण है, खासतौर से गरीबी और असमानता, खाद्य सुरक्षा तथा पारिस्थिकी तंत्रों की सुरक्षा जैसी चुनौतियों के प्रसंग में। भारत के पांच अतिविशाल (मेगा अर्बन) शहरी क्षेत्रों, पांच उभरते शहरी क्षेत्रों और बुनियादी ढांचे में असमान निवेश वाले पांच अल्पविकसित क्षेत्रों के बीच आर्थिक संभावनाओं व लाभों के संतुलन पर केंद्रित क्षेत्रवार पद्धति आगे बढ़ने के लिए एक संभावनाशील रास्ता हो सकती है (रेवी एवं अन्य, 2020)।

शहरी असुरक्षाओं का समाधान

भारत में टिकाऊ शहरीकरण को आगे बढ़ाने की इस पद्धति के लिए ये बहुत जरूरी है कि एसडीजी लक्ष्यों तथा न्यू अर्बन एजेंडा (एनयूए) को लागू करने के लिए चार प्रकार के अन्यायों या आपस में गुंथी असुरक्षाओं को दूर किया जाए। हमें सुनिश्चित करना होगा कि 'कोई व्यक्ति, कोई स्थान और कोई पारिस्थितिकी तंत्र पीछे न छूट जाए' (संयुक्त राष्ट्र, 2015; संयुक्त राष्ट्र 2017)।

भौतिक असुरक्षा : भारतीय शहरों में रहने वाली एक बहुत बड़ी आबादी तरह-तरह के खतरों और जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों की आशंका में जी रही है। न तो भवन निर्माण के नियमों का अच्छी तरह पालन किया जा रहा है और ना ही उनके रख-रखाव और आर्थिक संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता है। यह बात ऐसे शहरी गरीबों के मामले में स्पष्ट दिखाई देती है जो अकसर निम्न आय तबकों को बेदखल करते जाने वाले बाजार की वजह से निरंतर असुरक्षित स्थानों पर रहने के लिए विवश होते जाते हैं और फलस्वरूप सुरक्षित आवास और सुविधाओं तक पहुंच हासिल नहीं कर पाते।

आर्थिक असुरक्षा : शहरों में बहुत छोटी जगह पर बहुत सारे लोग और बहुत सघन आर्थिक गतिविधियां व उत्पादन होता है जिसकी वजह से गरीबी, असुरक्षा और आर्थिक जोखिम भी सघन हो जाते हैं। भारत में यह स्थिति ज्यादा दिखाई देती है क्योंकि अधिकांश रोजगार अनौपचारिक क्षेत्र में हैं और इन उद्योगों में उन्हें किसी तरह की सामाजिक सुरक्षा भी नहीं मिलती (जैन एवं अन्य, 2014)। ऐसे में किसी भी तरह का आर्थिक और पर्यावरणीय झटका असंख्य लोगों के जीवन में बहुत भारी संकट और अभाव पैदा कर देता है। कोविड-19 लॉकडाउन के दौरान इसे हमने बहुत भीषण रूप में देखा है।

पर्यावरणीय असुरक्षा : तीव्र शहरीकरण के कारण स्थानीय एवं क्षेत्रीय पर्यावरण पर दबाव भी तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। इससे मौजूदा जोखिम सघन हुए हैं तथा नए जोखिम भी पैदा हो रहे हैं। मसलन, वायु एवं जल प्रदूषण तथा ठोस कचरा प्रबंधन के स्तर पर नई चुनौतियां पैदा हो रही हैं। नगर सेवाएं तथा भूरा/ब्राउन एवं हरित बुनियादी ढांचा अकसर बढ़ती आबादी और शहरी विस्तारों के साथ नहीं फैल पाता है (रेवी एवं अन्य, 2020)। शहरों में भूमि प्रयोग में तेजी से आने वाले बदलावों और लगातार फैलाव की वजह से जमीन में पानी के जमा होने के लिए कोई गुंजाइश नहीं बचती, शहरी वानिकी और खेती लगभग खत्म हो जाती है जिसकी वजह से शहर सूखे जैसी स्थितियों से घिरे रहते हैं (बज़ाज़ एवं अन्य, 2016)। शहरों में हरियाली भी कम हुई है जिसकी वजह से शहरों का तापमान बढ़ गया है। इससे न केवल इंसानी स्वास्थ्य बल्कि उनकी उत्पादन क्षमता पर भी बुरा असर पड़ रहा है।

सामाजिक असुरक्षा : तमाम तरह की संवैधानिक सुरक्षाओं और प्रावधानों के बावजूद भारत दुनिया के उन देशों में शुमार किया जाता है जहां सामाजिक असमानता सबसे गहरी है। यहां जाति, जेंडर, धर्म, नृजातीय पहचान और रुचियों के आधार पर बेदखली की बहुत जटिल व्यवस्था चलती है। शहरी असमानता के बढ़ने से यह स्थिति और पेचीदा हो जाती है। इस तरह की सामाजिक असुरक्षाओं को संबोधित किए बिना बेदखली और असुरक्षाओं से निपटने की दिशा में ज्यादा सफलता नहीं मिल पाएगी।

भारत की समकालीन शिक्षा व्यवस्था इन असुरक्षाओं, खासतौर से शहरी इलाकों में व्याप्त ऐसी असुरक्षाओं तथा जाति, जेंडर, वर्ग और नृजातीय पहचान के साथ उनके अंतर्संबंधों को ज्यादा महत्व नहीं देती। टिकाऊ शहरीकरण के लिए अनुकूल शिक्षा विकसित करने के लिए जरूरी है कि हम अंतर्अनुशानात्मक ज्ञान संरचनाओं को बढ़ावा दें, अंतर्अनुशासनात्मक पाठ्यचर्या एवं शिक्षाशास्त्र को बढ़ावा दें ताकि मौजूदा शहरी क्षेत्र में इस कमी को दूर किया जा सके और संबंधित विषयों और पेशेवर शिक्षा व्यवहारों में भी इस कमी को दूर किया जा सके।

टिकाऊ विकास लक्ष्यों का शहरी प्रसंग

एसडीजी 11 सहित लगभग सभी टिकाऊ विकास लक्ष्य (एसडीजी) स्थानीय कार्रवाइयों पर आश्रित दिखाई देते हैं। इस स्थानीयकरण का मतलब यह है कि एसडीजी लक्ष्यों को स्थानीय स्तर पर स्थानीय शासन एवं संबंधित पक्षों द्वारा लागू करने के लिए उनके अनुकूलन, क्रियान्वयन और निगरानी की व्यवस्था विकसित की जाए। ऐसे में स्थानीय शासन एवं संबंधित पक्ष इन लक्ष्यों को अपने संदर्भ के अनुसार ढाल सकते हैं (कन्नूरी एवं अन्य, 2016)।

एसडीजी स्थानीयकरण के लिए जरूरी है कि योजनाएं स्थानीय स्तर पर बनाई जाएं, उनका क्रियान्वयन और निगरानी स्थानीय स्तर पर हो। हमारे देश में संस्थागत, क्षमता संबंधी और डेटा के स्तर पर बहुत भारी कमियां और फासले मौजूद हैं जिनकी वजह से एसडीजी लक्ष्यों का क्रियान्वयन खतरे में पड़ सकता है। इसी संदर्भ में प्रासंगिक उच्च शिक्षा एवं क्षमतावर्धन कार्यक्रमों को एसडीजी स्थानीयकरण के लिए एक सुगमतावर्धक स्थिति के रूप में चिहिन्त किया गया है। इस प्रसंग में मुख्य बिंदु ये हैं : (क) कार्यात्मक एवं संचालन कौशल; (ख) जल एवं स्वच्छता इंजीनियरिंग, शहरी नियोजन, समेकित कचरा प्रबंधन और नागरिक एवं परिवहन इंजीनियरिंग जैसे विशेष क्षेत्रों के साथ जुड़े तकनीकी कौशल; (ग) सभी संबंधित पक्षों के रवैये एवं व्यवहारों में सांस्कृतिक बदलाव, जैसे स्वच्छता और लोक स्वास्थ्य के प्रसंग में (कन्नूरी एवं अन्य, 2016)।

टिकाऊ शहरों एवं समुदायों के लिए शिक्षा

एनसीईआरटी की स्कूली पाठ्यपुस्तकों की प्रारंभिक समीक्षा से पता चलता है कि देश भर की स्कूली शिक्षा व्यवस्था से शहरों एवं शहरी इलाकों से संबंधित शिक्षा लगभग गायब है। शहरी प्रसंगों का संदर्भ आमतौर पर लुप्त सभ्यताओं और शहरी अभिशासन को नागरिक शास्त्र की शिक्षा के साथ जोड़ने के प्रसंग में ही कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है।

स्नातक स्तर पर शहरों से संबंधित शिक्षा आर्किटेक्चर ऐण्ड प्लानिंग (जिसमें मानव पर्यावास एवं निर्मित वातावरण का अध्ययन किया जाता है) जैसे परंपरागत पेशेवर कार्यक्रमों में ज्यादा दिखाई देती है। वहां मुख्य रूप से निर्मित वातावरण (आर्किटेक्चर), जमीन के इस्तेमाल तथा विकास को नियोजित व परिभाषित करने के साधन के रूप में उसकी भूमिका (प्लानिंग), शहरों के लिए इमारतों और बुनियादी ढांचे के निर्माण या रीयल ऐस्टेट जैसे विषयों का अध्ययन किया जाता है। कुछ संस्थाएं समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र जैसे विषयों में भी शहरों के अध्ययन पर जोर दे रही हैं।

स्नातकोत्तर कार्यक्रम अधिकांशतः विशेषज्ञता आधारित होते हैं जिनमें आवास, शहरी डिजाइन या पर्यावरणीय एवं परिवहन नियोजन जैसे खास आयामों पर ही मुख्य जोर रहता है। ऐसे ज्यादातर कार्यक्रमों में टिकाऊ विकास के केंद्र के रूप में शहरी क्षेत्र की समझ या तो बहुत कमजोर होती है या असमानता व असुरक्षा को संबोधित करने के प्रसंग में शहर को एक महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि के रूप में नहीं देखा जाता है।

शहरी इलाकों में भारत की अर्थव्यवस्था का फैलाव और आवास, शहरी पुनर्नवीकरण, शहरी बुनियादी ढांचे और स्मार्ट सिटी डेवलपमेंट जैसे क्षेत्रों में चलाए जा रहे विशाल सरकारी कार्यक्रमों से क्षमतावान शहरी प्रेक्टिशनर्स का एक नया बाजार पैदा हुआ है। इसके अलावा इस बात को भी मान्यता दी जाने लगी है कि शहरी इलाकों में जो अधिकारी और प्रेक्टिशनर सक्रिय हैं उन्हें अपने कामकाज को बेहतर बनाने और शहरीकरण की इस विशाल परिघटना को समझने के लिए समय-समय पर

प्रशिक्षण और क्षमतावर्धन सहायता की जरूरत होती है।

टिकाऊ शहरों और समुदायों का प्रसंग एसडीजी के समूचे धरातल पर फैला हुआ है। 2030 एजेंडा की प्रतिबद्धता को साकार करने, 'किसी व्यक्ति, किसी स्थान और किसी पारिस्थितिकीय तंत्र को पीछे ना छोड़ने', असमानता को खत्म करने, न्यू अर्बन एजेंडा, पेरिस क्लाइमेट एग्रीमेंट और सेंडाई के प्रति प्रतिबद्धता को साकार रूप देने के लिए स्थानीय स्तर या क्षेत्रीय स्तर पर टिकाऊ विकास को प्रमुखता दी गई है (रड और अन्य, 2018; डे कोनिंक एवं अन्य, 2018; रेवी 2016; रेवी एवं रोज़नविग, 2013)।

टिकाऊ शहरों (भारत की एक तिहाई आबादी शहरी इलाकों में रहती है) और टिकाऊ समुदायों (भारत की दो तिहाई आबादी गांवों में रहती है) हेतु शिक्षा के लिए हमें संबंधित ज्ञान व क्षमताओं की पड़ताल करनी होगी और मानव इतिहास के सबसे विशाल शहरीकरण के लिए तैयारी करनी होगी क्योंकि भारत की आबादी 1.5 अरब को छूने जा रही है। इसके लिए जरूरी है कि अलग-अलग विषयों के बीच समन्वय के आधार पर टिकाऊ शहरों व समुदायों से संबंधित शिक्षा देश की पेशेवर एवं उच्च शिक्षा व्यवस्था में भी आगे चले (पीटर्स एवं रेवी, 2013)।

मौजूदा शैक्षिक कार्यक्रमों और मुट्ठी भर संस्थाओं द्वारा संबोधित की जा रही व्यक्त आवश्यकता के बीच एक विशाल फासला दिखाई देता है। मगर, शैक्षिक व्यवहार एवं सुधारों के परंपरागत स्वरूप एवं दशा-दिशा के बावजूद हमें इन क्षमताओं को गुणात्मक रूप से बढ़ाना होगा।

भारत में आईआईएचएस इस मद में राष्ट्रीय स्तर का बहुत महत्वपूर्ण संस्थान है जहां अर्बन फैलो प्रोग्राम के रूप में स्नातकोत्तर स्तर पर एक अंतर्विषयक कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इसमें शहरी टिकाऊपन को जमीन से जुड़े सिद्धांत और व्यवहार को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण थीम के रूप में संबोधित किया जाता है। अर्बन फैलो प्रोग्राम की पाठ्यचर्या आईआईएचएस द्वारा अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर तैयार की गई पाठ्यचर्या पर आधारित है। इस पाठ्यचर्या को आईआईएचएस ने एमआईटी, यूसीएल, यूटीसी तथा यूएसएबीसी, साओ पाउलो सहित दुनिया के बहुत सारे चोटी के विश्वविद्यालयों और भारत में सक्रिय तकरीबन सौ प्रेक्टिशनरों और विशेषज्ञों की मदद से तैयार किया गया है (आईआईएचएस, 2013; एमआईटी, 2013)।

आईआईएचएस का एमओओसी ऑन सस्टेनबल सिटीज़ आधुनिकतम एसडीजी-केंद्रित शिक्षा मुहैया कराने का एक बढ़िया उदाहरण है जिसमें युवा प्रोफेशनल्स, शहरी प्रेक्टिशनर्स तथा नागरिकों को इसके लिए मदद दी जाती है कि वे शहरों के टिकाऊ विकास तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपट सकें (अधिक विवरण के लिए ईएसडी संबंधी भाग में दिए गए बॉक्स को देखें)।

टिकाऊ शहरों और समुदायों के लिए शिक्षा से संबंधित शोध विषय

इस दिशा में कुछ संभावित शोध विषय इस प्रकार हैं :

- एसडीजी स्थानीयकरण को एसडीजी 11 से अन्य एसडीजी लक्ष्यों तथा उनसे संबंधित ज्ञान सृजन बिंदुओं तक विस्तार दिया जाए।
- एसडीजी लक्ष्यों के प्रसंग में परस्पर संबंद्ध शहरी असुरक्षाओं को कैसे संबोधित किया जा सकता है, खासतौर से स्थान संबंधी, सामाजिक, पर्यावरणीय न्याय के अंतर्संबंधों को कैसे संबोधित किया जा सकता है।
- टिकाऊ शहरों और समुदायों के संदर्भ में तथा टिकाऊ विकास हेतु शिक्षा के प्रसंग में कोविड के बाद की दुनिया में शहरी भविष्य का अध्ययन।
- भारत में शिक्षक शिक्षा तथा टिकाऊ शहरीकरण के अंतर्विषयक कार्यक्रमों में लर्निंन एवं शिक्षाशास्त्र की विवेचनात्मक समीक्षा व अध्ययन।
- परफॉर्मिंग एवं फाईन आर्ट्स तथा डिजिटल माध्यमों से लैस लर्निंग का प्रयोग करते हुए शहरी टिकाऊपन के इर्द-गिर्द व्यापक लोक सक्रियता एवं सामाजिक लर्निंग पद्धतियों की पड़ताल।
- टिकाऊ शहरों और समुदायों से संबंधित शिक्षा को किस प्रकार शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में समाहित किया जा सकता है।

टिकाऊ विकास हेतु शिक्षा

हम इस मान्यता के साथ प्रस्थान कर रहे हैं कि 'सामाजिक एवं पर्यावरणीय न्याय' के सिद्धांतों के आधार पर 'टिकाऊ भविष्य' को साकार करने में शिक्षा एक निर्णायक भूमिका अदा करती है। जैसा कि टीईएसएफ फाउंडेशंस पेपर (2020) में इंगित किया गया था, "सामाजिक एवं पर्यावरणीय न्याय को ऐसी *सामाजिक व्यवस्थाओं* की स्थापना के रूप में देखा जा सकता है जो मौजूदा और भावी पीढ़ियों को व्यावहारिक, *निष्पक्ष अर्थव्यवस्थाओं* के निर्माण में तथा सामाजिक जीवन में *समान रूप से* सहभागी बना सकें; इसमें सभी की खुशहाली को केंद्र में रखा जाए और *अन्य प्रजातियों व प्राकृतिक व्यवस्थाओं की एकबद्धता को भी मान्यता दी जाए और उन्हें किसी तरह की क्षति ना पहुंचाई जाए।"*

टिकाऊ विकास हेतु विजन और रणनीति विकसित करने के लिए हमें संबंधित इलाके और समाज के ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय संदर्भों पर गौर करना होगा। शिक्षा और टिकाऊ विकास के बीच जो संबंध दिखाई देता है, उसे तीन उद्देश्यों की कसौटी पर कसना होगा : (क) ये समझा जाए कि शैक्षिक एवं ज्ञान व्यवस्थाएं ऐसे विकास को बढ़ावा देने में क्या भूमिका अदा करती हैं जिसे 'गैर-टिकाऊ' माना जा सकता है; (ख) शिक्षा का किस प्रकार रूपांतरण किया जाए ताकि वह टिकाऊ भविष्य की ओर बढ़ने के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय परिवर्तन का लक्ष्य हासिल कर सके; तथा (ग)एसडीजी-केंद्रित शिक्षा, यानी एसडीजी 11 (टिकाऊ शहरों एवं समुदायों से संबंधित) तथा एसडीजी 13 (जलवायु कार्यवाई से संबंधित) पर केंद्रित शिक्षा को मौजूदा उच्च शिक्षा, शिक्षक शिक्षा तथा सार्वजनिक शिक्षा की रूपरेखा और प्रक्रिया में किस प्रकार समाहित किया जा सकता है।

भारतीय स्कूली शिक्षा में सामाजिक, जेंडर आधारित, पर्यावरणीय, आर्थिक एवं शैक्षिक असमानताओं का विश्लेषण करने से पता चलता है कि बेहद परतबद्ध, बेदखली की व्यवस्थाओं से ग्रस्त और गरीबी व असमानता से जूझ रहे समाज में ज्यादातर सार्वजनिक-निजी साझेदारियां सभी बच्चों के लिए अच्छी समतापरक शिक्षा का लक्ष्य हासिल नहीं कर पायी हैं। बहुत सारे मौजूदा भारतीय स्कूली शिक्षा कार्यक्रमों तथा उनके जरिए दिए गए ज्ञान ने गैर-टिकाऊ विकास को बढ़ावा दिया है। इसके बावजूद, एनसीएफ और एनसीएफटीई के इर्द-गिर्द एक गुंजाइश पैदा हुई है जिसमें शिक्षा के माध्यम से टिकाऊ भविष्य की ओर बढ़ने की संभावनाओं पर ध्यान दिया जा सकता है। इसे संभव बनाने के लिए जरूरी है कि शिक्षा की सरकारी व्यवस्था को मजबूती दी जाए, खराब सरकारी स्कूलों को दुरुस्त किया जाए, निजी संस्थाओं के नियमन और उत्प्रेरकों की व्यवस्था विकसित की जाए, शिक्षक शिक्षा की समस्याओं पर ध्यान दिया जाए और उस ज्ञान की पड़ताल की जाए जो स्थानीय, क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय संदर्भों में जटिल असमानता, विविधता और सामाजिक अन्याय जैसे मुद्दों को संबोधित करने के लिए आवश्यक है।

स्कूली शिक्षा को समग्र रूप में देखना जरूरी है और इसमें हमें सामाजिक एवं भावनात्मक लर्निंग को भी जरूर शामिल करना चाहिए जोकि संकट के समय बच्चों के लिए मदद का एक बहुत जरूरी जरिया हो सकता है। जनसांख्यिकीय एवं विवेचनात्मक नागरिकता, सामाजिक व सांस्कृतिक विविधता के प्रति संवेदनशीलता और उसकी समझ तथा अपने ग्रह की सुरक्षा जैसे बड़े सवालों को संबोधित करने के लिए हमें शिक्षा को एक लोकहितकारी वस्तु के रूप में देखना होगा। लिहाजा शिक्षा को केवल लर्निंग आउटकम्स हासिल करने के सीमित दायरे में नहीं समेटा जाना चाहिए। सरकारी स्कूलों और शिक्षक शिक्षा व्यवस्था को सींचने के लिए हमें फौरन उल्लेखनीय स्तर पर निवेश करना होगा। यह निवेश परिवारों और समुदायों द्वारा किए जा रहे निवेश के अलावा ऐसे सभी महत्वपूर्ण मदों में करना होगा जिनसे बच्चों और युवाओं की शिक्षा व उसके अवसरों में इजाफा हो।

पर्यावरणीय, आर्थिक एवं सामाजिक धरातल पर न्यायसंगत समाजों की रचना के लिए शिक्षा एक उल्लेखनीय भूमिका अदा कर सके, इसके लिए हमें ये देखना और समझना होगा कि स्तरीय शिक्षा का अर्थ क्या होता है। इसके लिए हमें मौजूदा असमानताओं के व्यवस्थागत स्वरूप की परतें उघाड़ना होंगी और समावेशन व बेदखली के उन जटिल संबंधों को भी समझना होगा जो मौजूदा संस्थागत क्षमताओं और स्थापित स्थानीय व्यवहारों से पैदा हो रहे हैं। तब इस बारे में एक बेहतर समझदारी भी हासिल होगी कि शैक्षिक असमानता शिक्षा की समग्र संभावनाओं को साकार करने में किस तरह अवरोध पैदा करती है। इस प्रसंग में उच्च शिक्षा संस्थानों और उनमें होने वाले शोध की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण है। इसके उदाहरण के रूप में सत्तर के दशक के मध्य से भारत के विभिन्न उच्च शिक्षा संस्थानों में चलाए जा रहे वीमेंस स्टडीज विषय और विभागों के विकास को देख सकते हैं। इन विभागों की कोशिशों से सरकारी नीतियों, कार्यक्रमों और कानूनों पर सीधा असर पड़ता है (मीनो, 1988)।

बैचलर ऑफ एलीमेंटरी एजुकेशन (बीएलएड) दिल्ली विश्वविद्यालय में चलाया जा रहा एक उल्लेखनीय शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम 1994 में शुरू किया गया था। इस चार वर्षीय कार्यक्रम की संरचना और शिक्षाशास्त्र अंतर्विषयक और पराविषयक शोध, सिद्धांत व व्यवहार के संवादिक आदान-प्रदान, स्कूली ज्ञान की विनिर्मिति और पुनर्निर्मिति, मानव संबंधों पर काम, स्वः तथा संचार के व्यवहार और रचनात्मक व पेशेवर कौशलों के तत्काल मिलने वाले अनुभवों पर आधारित हैं।

इस कार्यक्रम में भावी अध्यापिकाओं को प्रचलित नॉर्मेटिव विमर्शों की पड़ताल करने का मौका मिलता है। वे यह देख पाती हैं कि ये विमर्श किस प्रकार हमारे सामाजिक संबंधों और जीवन की दिशा को निर्धारित करते हैं। इसके लिए एक अंतर्विषयक नजरिया अपनाया जाता है। इस कार्यक्रम के दौरान ज्ञान, मेरिट और वस्तुनिष्ठता की कथित तटस्थता पर सवाल खड़े किए जाते हैं और इस बात की पड़ताल की जाती है कि अलग-अलग समुदायों के जीवन अनुभवों के साथ इनका क्या संबंध होता है। रंगमंच के माध्यम से भावी अध्यापिकाओं को ऐसी 'संभावनाएं' सोचने और रचने का मंच मिलता है जहां फिलहाल कोई संभावना दिखाई नहीं दे रही है। सीखने, शिक्षाशास्त्र की धारणाओं में ज्ञानशास्त्रीय विचलन और 'कक्षा परिधि के लोकतांत्रीकरण' जैसी संभावनाओं के लिए भी थियेटर एक बढ़िया साधन की भूमिका अदा करता है।

इस कार्यक्रम के अलग-अलग हिस्से भावी अध्यापिकाओं को उनकी आकांक्षाओं और पहचानों के निकट लाते हैं, जिससे उन्हें एक साझा उद्देश्य के साथ काम करने वाले सामुदायिक सदस्यों के रूप में आगे बढ़ने का मौका मिलता है। यहां उन्हें ऐसे मुक्तिदायी अवधारणात्मक साधन व उपकरण मिलते हैं जिनके सहारे वे समाजीकरण की बेड़ियों को तोड़ सकती हैं। 'सामाजिक रूप से निर्मित स्वत्व' के जरिए निजी चिंतन क्षमता (एजेंसी) को सींचने पर भी जोर दिया जाता है जिसमें समाजीकरण को 'भविष्य की आशाओं, भय और आकांक्षाओं के प्रसंग में पुनर्रचित' रूप में देखा जाता है। मनोगत पक्ष पर भी जोर दिया जाता है जिससे छात्राओं को व्यक्तिगत पहचानों को नए सांचे में ढालने के रचनात्मक अवसर मिलते हैं। जैसे-जैसे ये अध्यापिकाएं अपने इर्द-गिर्द होने वाली सामाजिक नाइंसाफियों के प्रति जागरूक होती जाती हैं, वे शिक्षा को अराजनीतिक वस्तु के रूप में देखने की प्रवृत्तियों पर भी सवाल उठाने लगती है और उनका विरोध करने लगती हैं।

इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा विभिन्न टिकाऊ विकास लक्ष्यों के बीच अंतर्संबंध विकसित करने में योगदान देती है। अलग-अलग ज्ञान स्रोतों का प्रश्न और उन पर काम करने तथा उनको निर्धारित करने में अध्यापकों और नागरिकों की चिंतन क्षमता का सवाल इन अंतर्संबंधों को समझने का केंद्रीय बिंदु बन जाता है।

अंतर्विषयक शिक्षक शिक्षा (बीएलएड) और टिकाऊ शहरीकरण (यूएफपी) के प्रसंग में सफल प्रयोग तो हुए हैं मगर अभी इन्हें मुख्यधारा के व्यवहार के रूप में उतनी स्वीकार्यता नहीं मिल पायी है जितनी मिलनी चाहिए थी। लिहाजा हमें उन ज्ञानशास्त्रीय रूपरेखाओं पर और ध्यान देना होगा जिनमें ज्यादातर शिक्षा चल रही है।

जैसा कि तमिलनाडु अर्बन सेनिटेशन सपोर्ट प्रोग्राम (टीएनयूएसएसपी) से संबंधित बॉक्स में बताया गया है, हमें सार्वभौमिक या लक्ष्य आधारित समस्या निर्धारण (जिनका एसडीजी प्रतिनिधित्व करते हैं) और सामान्य व अनुशासनात्मक शिक्षा के बीच बनने वाले अंतर्संबंधों की भी आलोचनात्मक ढंग से जांच करनी होगी। जमीनी धरातल पर एसडीजी क्रियान्वयन को स्थानीय ईएसडी अवसरों व शोध के साथ कैसे जोड़ा जा सकता है और किस तरह जमीनी अनुभवों से निकले सिद्धांतों का उच्च शिक्षा और शिक्षक शिक्षा पाठ्यचर्याओं में समावेश किया जा सकता है यह हम सभी के लिए एक खुला प्रश्न है।

डिजिटल साधनों से युक्त लर्निंग (जिसके बारे में आईआईएचएस के सस्टेनेबल सिटीज एमओओसी से संबंधित निम्नलिखित बॉक्स में बताया गया है) के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा सहित समूची सार्वजनिक शिक्षा के लिए ईएसडी में क्या संभावनाएं हैं और इस विषय में कौन से अभिनव प्रयोग किए जा सकते हैं, इस पर हमें और ध्यान देना होगा।

आईआईएचएस का तमिलनाडु अरबन सेनिटेशन सपोर्ट प्रोग्राम (टीएनयूएसएसपी) एसडीजी 6 (साफ पानी और स्वच्छता) के संदर्भ में समुदाय के भीतर सफाई कर्मचारियों में जेंडर समानता और समावेशन को बढ़ावा देने के लिए चलाया जा रहा है जिसमें राज्य के 600 से ज्यादा शहरों और कस्बों में 1.2 करोड़ से ज्यादा लोगों को सेवाएं दी जा रही हैं।

इसी कार्यक्रम के भीतर एक स्कूल वॉश (डब्ल्यूएएसएच) कार्यक्रम भी चलाया जा रहा है जिसके तहत स्कूलों में बुनियादी ढांचे में सुधार; स्वच्छता संबंधी उपायों की पहचान; तथा सामुदायिक शौचालयों के पुनरुद्धार पर जोर दिया जाता है। इन सबके माध्यम से एसडीजी 4, 5 और 6 की पूर्ति के लिए काम किया जा रहा है।

मैसिव ओपन ऑनलाईन कोर्स (एमओओसी) ऑन सस्टेनेबल सिटीज़

एसडीजी एकेडेमी की साझेदारी में आईआईएचएस ने 2017 में टिकाऊ शहरों पर एक एमओओसी कार्यक्रम संचालित किया था। इस कार्यक्रम में एसडीजी 11 को शेष टिकाऊ विकास लक्ष्यों के साथ जोड़ने वाले सवालों पर गौर किया गया था। फिलहाल यह कार्यक्रम एडएक्स (edX) पर चलाया जा रहा है और यह शहरों से संबंधित दुनिया भर के पांच शीर्षस्थ कार्यक्रमों में से एक है। फिलहाल 150 देशों के 33,000 से ज्यादा पंजीकृत लोग इसमें हिस्सा ले रहे हैं। इनमें से बहुत सारे शिक्षु भारत के हैं क्योंकि इस कार्यक्रम में भारत और दक्षिण के देशों से बहुत सारे उदाहरण लिए गए हैं और इसमें हिंदी सब टाईटल्स भी उपलब्ध हैं जिसके चलते यह भारत के बहुत सारे सहभागियों के लिए आसान हो गया है।

बेहतर उत्पादकता और कम असमानता के सहारे कैसे शहरी व्यवस्थाओं को ज्यादा टिकाऊ बनाया जा सकता है, कैसे शहरों में मूलभूत सेवाओं और बुनियादी ढांचे को मुहैया कराया जा सकता है, सरकारी, उद्यमीय तथा नागर समाज संगठनों और नागरिकों के बीच साझेदारियों के माध्यम से शहरी वातावरण की कैसे रक्षा की जा सकती है, इसके बारे में यह पाठ्यक्रम एक आर्थिक, सामाजिक और पारिस्थितिकीय पद्धति का प्रयोग करता है। यह पाठ्यक्रम इस लिहाज से भी अनूठा पाठ्यक्रम है कि इसके 11 हफ्ते और 55 सत्रों की अवधि में दुनिया के 27 शीर्षस्थ शहरी विशेषज्ञ अपना योगदान देते हैं।

ये विशेषज्ञ सभी 6 महाद्वीपों से चुने गए हैं और इनमें से ज्यादातर लोग संयुक्त राष्ट्र में एसडीजी 11 के निर्धारण में भी शामिल रहे हैं और दुनिया भर में उसको क्रियान्वित करने में भी योगदान दे रहे हैं। इस पाठ्यक्रम को आईआईएचएस की एक टीम ने 6 महाद्वीपों के 20 शहरों में शूट किया है जिससे इसके सहभागियों को खुद अपने संदर्भों के अनुसार एसडीजी क्रियान्वयन प्रक्रियाओं की तुलना करने का बढ़िया अवसर मिलता है। इसमें सापेक्ष शहरवाद की पद्धति अपनाई जाती है। मसलन, ये देखा जाता है कि सार्वभौमिक समाधानों (जैसे एसडीजी) के क्रियान्वयन में उत्तर औपनिवेशिक संदर्भ में मुंबई और लंदन जैसे शहरों में किस तरह की क्रियान्वयन संबंधी चुनौतियां आती हैं और उनसे विकास की दिशा पर क्या असर पड़ता है।

नीलगिरीज़ फील्ड लर्निंग सेंटर तथा देशज एवं परंपरागत ज्ञान

दि नीलगिरीज फील्ड लर्निंग सेंटर (एनएफएलसी) कीस्टोन फाउंडेशन तथा कॉर्नेल युनिवर्सिटी के बीच एक साझेदारी है। इसमें कॉर्नेल युनिवर्सिटी के आधा दर्जन स्नातकीय विद्यार्थी और इतने ही स्थानीय आदिवासी युवा एक साथ इकट्ठा होते हैं और एक-दूसरे से सीखने की कोशिश करते हैं। यह कार्यक्रम हर साल चलाया जाता है। इस कोर्स का पहला चरण कक्षा आधारित होता है जिसमें सहभागियों को नीलगिरि बायोस्फीयर (घास के मैदान, गीली भूमि, वन्य जीवन, आवास, भोजन संग्रह तकनीक आदि) से परिचित कराया जाता है। इस कोर्स में लर्निंग प्रेक्षण पर आधारित होती है। कॉर्नेल के विद्यार्थी अपने साथ जबर्दस्त विश्लेषणात्मक एवं सैद्धांतिक कौशल व ज्ञान लेकर आते हैं जबकि आदिवासी नौजवान स्थानीय पर्यावरण और संस्कृति का अपना जीवन अनुभव और सूझ-बूझ लेकर आते हैं। वे अपनी स्थानीय भाषाओं, पानी, संसाधनों और आजीविकाओं के साथ सजीव संबंध साथ लेकर आते हैं। इस कोर्स के दूसरे चरण में कॉर्नेल विश्वविद्यालय के विद्यार्थी आदिवासी युवाओं को अपने शिक्षक के रूप में देखते हैं और गांवों में उनके साथ जाकर रहते हैं। इस दौरान वे पानी और कचरा, खेती, वन्य जीवन, सामुदायिक खुशहाली, स्वास्थ्य और पर्यावरणीय अभिशासन जैसे विषयों से संबंधित अलग-अलग प्रोजेक्ट्स पर काम करते हैं।

टिकाऊ विकास शिक्षा से संबंधित शोध विषय

इस क्षेत्र में शोध के कुछ संभावित विषय ये हो सकते हैं :

- स्कूलों तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में पर्यावरणीय, सामाजिक, आर्थिक और ज्ञानशास्त्रीय न्याय के प्रश्नों को संबोधित करने के लिए ईएसडी की संभावनाओं पर शोध।
- ईएसडी तथा जलवायु परिवर्तन शिक्षा के अंतर्संबंध तथा उनके अलग-अलग एवं संभावित मिले-जुले परिणाम, साझा शिक्षाशास्त्र और ज्ञानशास्त्रीय रूपरेखाओं पर शोध।
- ईएसडी तथा टिकाऊ नगर एवं समुदाय शिक्षा के अंतर्संबंध और उनके पृथक एवं संभवतः मिले-जुले परिणाम, शिक्षाशास्त्र और ज्ञानशास्त्रीय रूपरेखाओं पर शोध।
- ये देखा जाए कि भारत के शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में ईएसडी को कैसे समाहित किया जा सकता है।
- मंच कलाओं एवं ललित कलाओं की मदद से और डिजिटल लर्निंग के अंशों का समावेश करते हुए ईएसडी के इर्द-गिर्द व्यापक लोक सक्रियता एवं सामाजिक लर्निंग के तरीकों की पड़ताल करना।

निष्कर्ष

इस पर्चे में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दों और सरोकारों को सामने रखने की कोशिश की गई है जो सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ भविष्य रचने के लिए शिक्षा व्यवस्था के पुनर्निर्धारण हेतु आवश्यक हैं। इस पर्चे में ये समझने की जरूरत पर भी जोर दिया गया है कि समाज में सामाजिक, जेंडर आधारित, आर्थिक, पर्यावरणीय एवं ज्ञानशास्त्रीय अन्याय को किस तरह कायम रखा जाता है और किस तरह उसको बढ़ावा दिया जाता है; किस तरह शैक्षिक असमानता सामाजिक और पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ समाजों को साकार करने के लिए शिक्षा की पूरी संभावनाओं को सामने नहीं आने देती; और शहरों व जलवायु परिवर्तन के प्रसंग में इस बात को कैसे साकार रूप दिया जा सकता है।

विशेषज्ञों का अनुमान है कि गरीबी, स्वास्थ्य, भोजन व जल सुरक्षा, आवासीय एवं अरचनागत सेवाओं, भू एवं समुद्री पारिस्थितिकीय तंत्रों के स्वास्थ्य जैसे मामलों में भारत की एसडीजी लक्ष्यों को प्राप्त करने की क्षमता जलवायु परिवर्तन की वजह से बुरी तरह प्रभावित होने वाली है। अगले कुछ दशकों के दौरान भारत में मानव इतिहास का सबसे विशाल शहरीकरण अभियान सामने आ रहा होगा जिसके लिए गरीबी व असमानता दूर करने की कोशिशों को और बढ़ाना होगा, टिकाऊ आजीविकाएं मुहैया करानी होंगी, सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक संरक्षण, स्वास्थ्य व शिक्षा सुविधाओं को बढ़ाना होगा और पानी, स्वच्छता व साफ ऊर्जा जैसी मूलभूत सेवाओं तक पहुंच को विस्तार देना होगा। टिकाऊ विकास संबंधी जरूरतों को पूरा करने वाला विजन और रणनीति तैयार करने के लिए हमें अपने खास ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय संदर्भों को ही नहीं बल्कि उन असमानताओं को भी संबोधित करना होगा जो अलग-अलग क्षेत्रों और समुदायों में बहुत विशिष्ट रूप में सामने आती हैं। भारत की समकालीन शिक्षा में इन संदर्भों, असमानताओं, असुरक्षाओं और उनके अंतर्संबंधों को ज्यादा मान्यता नहीं दी जाती है।

शिक्षा एवं टिकाऊ विकास के मौजूदा संबंधों की पड़ताल करते हुए तीन उद्देश्यों को ध्यान में रखना होगा : ये समझना होगा कि किस तरह शिक्षा व ज्ञान व्यवस्थाएं भी 'गैर-टिकाऊ' विकास को बढ़ावा देने की भागी हो सकती हैं; शिक्षा के रूपांतरण से टिकाऊ भविष्य की ओर बढ़ने के लिए सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय बदलावों का सूत्रपात किस तरह किया जा सकता है; और मौजूदा उच्च शिक्षा, शिक्षक शिक्षा तथा लोक शिक्षा की रूपरेखा व प्रक्रियाओं में एसडीजी केंद्रित शिक्षा को किस प्रकार समाहित किया जा सकता है। टिकाऊ भविष्य की शिक्षा के लिए हमें अंतर्विषयक ज्ञान संरचनाएं, पाठ्यचर्याएं और शिक्षाशास्त्र विकसित करने होंगे ताकि अलग-अलग विषयों के बीच मौजूद फासलों को दूर किया जा सके और उनकी वजह से पेशेवर शिक्षा में पैदा होने वाली कमियों को दूर किया जा सके। औपचारिक शैक्षिक प्रयासों के माध्यम से ऐसी छोटी-छोटी परंतु फैलती कोशिशों को सींचना होगा जो व्यवहार व शोध की विविध ज्ञान व्यवस्थाओं, खासतौर से देशी एवं स्थानीय ज्ञान व वैश्विक परंपराओं पर आधारित ज्ञान व्यवस्थाओं की मदद से समाधान ढूंढने का प्रयास कर रही हैं।

इसके लिए जरूरी है कि शिक्षा की सरकारी व्यवस्था को मजबूती दी जाए, कमजोर सरकारी स्कूलों और सरकारी विश्वविद्यालयों में सुधार किए जाएं, निजी शिक्षा प्रदाताओं के लिए उचित कायदे-कानून बनाए जाएं। शिक्षक शिक्षा की चिंताओं को संबोधित किया जाए और उन ज्ञान व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाए और उनको विस्तार दिया जाए जो स्थानीय, क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय संदर्भों में जटिल असमानताओं, विविधता और सामाजिक अन्याय जैसी समस्याओं को संबोधित करने में मदद कर सकती हैं। व्यापक उद्देश्य ये जानना होगा कि स्कूल, उच्च एवं पेशेवर शिक्षा, जिसमें शिक्षक शिक्षा भी शामिल है, का किस तरह रूपांतरण

किया जाए जिससे वह विवेचनात्मक ज्ञान व क्षमताओं के विकास में मददगार हो; सामाजिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ व न्यायसंगत समाज के विकास की दिशा में अध्यापकों और विद्यार्थियों की चिंतन क्षमता को विकसित कर सके।

References

Aadhar, S., & Mishra, V. (2019). A substantial rise in the area and population affected by dryness in South Asia under 1.5°c, 2.0°c and 2.5°c warmer worlds. *Environmental Research Letters*, *14*(11), 0–12.

Aggarwal, P. K. (2008). Global climate change and Indian agriculture: Impacts, adaptation and mitigation. *Indian Journal of Agricultural Sciences*, *78*(11), 911–919.

AISHE (2019). All India Survey on Higher Education (AISHE) 2018-19. New Delhi: Department of Higher Education, Ministry of Human Resources Development, Government of India. Retrieved from: http://aishe.nic.in/aishe/viewDocument.action?documentId=262

Ali, H., & Mishra, V. (2018). Increase in sub-daily precipitation extremes in India under 1.5 and 2.0°C warming worlds. *Geophysical Research Letters, 45*(14), 6972–6982.

Altbach, P. G. (1993). The dilemma of change in Indian higher education. *Higher Education*, *26*(1), 3-20.

Anderson, A. (2012). Climate change education for mitigation and adaptation. *Journal of Education for Sustainable Development*, *6*(2), 191-206.

ASER (2019). *Annual Status of Education Report (Rural) 2018*. New Delhi: ASER Centre.

Ashby, E., & Anderson, M. (1966). *Universities: British, Indian, African: A study in the ecology of higher education*. Cambridge: Harvard University Press.

Aurobindo, S. (2002). *Letters on Yoga p. 234. Cited in Integral Psychology Sri Aurobindo Ashram Trust*, Pondicherry.

Balaram, P. (2009). The Indian Institute of Science: Reflections of a Century Current Science, Vol. 96, No. 10.

Ball, S. J. (2012). Global education inc: New policy networks and the neoliberal imaginary. Routledge.

Basu, A. (1974). *The growth of education and political development in India, 1898-1920*. Oxford: Oxford University Press.

Batra, P. (2005). Voice and agency of teachers: Missing link in national curriculum framework 2005. *Economic and Political Weekly*, 4347-4356.

Batra, P. (2012). Positioning Teachers in the Emerging Education Landscape of Contemporary India. *India Infrastructure Report on Education: Private Sector in Education*, 257-269. IDFC, New Delhi: Routledge.

Batra, P. (2015). Curriculum in India: Narratives, debates and a deliberative Agenda . In W. Pinar, *Curriculum Studies in India: Intellectual Histories and Present Circumstances.* Canada: Palgrave Macmillan.

Batra, P. (2019). Comparative Education in South Asia: Contribution, Contestation, and Possibilities. Wolhuter, C.C. and Wiseman, A.W. (Ed.) *Comparative and International Education: Survey of an Infinite Field (International Perspectives on Education and Society, Vol. 36)*, Emerald Publishing Limited, pp. 183-211.

Batra, P. (2020a). Echoes of 'Coloniality' in the Episteme of Indian Educational Reforms *Education Journal for Research and Debate*, *3*(7). In press. https://doi.org/10.17899/on_ed.2020.7.4

Batra, P. (2020b). National Education Policy (NEP 2020): Undermining the constitutional education agenda? *Social Change*, *50*(4), December 2020.

Batra, P. (2020c). Re-Imagining curriculum in India: charting a path beyond the pandemic. *Prospects*. https://doi.org/10.1007/s11125-020-09518-6

Batra, P. (in press). India's Education Problematique and State Betrayal: NEP (National Education Policy) 2020 and beyond. In Vikas Gupta, et al. (Eds.) *Modern Transformations and the Challenges of Inequalities in Education in India.* New Delhi: Orient Blackswan (In Press).

Batra, P. (forthcoming). Politics, Policy and Practice of Teacher Education Reform in India. In William T. Pink (Ed) *Encyclopaedia of School Reform*. Oxford: Oxford University Press (Forthcoming).

Bazaz, A., Jana, A., Revi, A. Malladi, T. (2016). *Urban India 2016: Evidence*. Bengaluru: Indian Institute for Human Settlements.

Central Board for Secondary Education (CBSE) (2005). *Circular No. 08/2005 - Introduction of Environmental Education as a compulsory subject in schools from Classes I to XII*. Retrieved from: https://tinyurl.com/y66lqs6b

Centre for Budget and Governance accountability (CBGA) (2019). *Numbers That count: Assessment of the Union Budgets of NDA II*. New Delhi: CBGA. Retrieved from: https://www.cbgaindia.org/wp-content/uploads/2019/02/Numbers-That-Count-An-Assessment-of-the-Union-Budgets-of-NDA-II.pdf

Chitnis, S. (1993). Gearing a colonial system of education to take independent India towards development. *Higher Education*, *26*(1), 21-41.

Chowdhury, S. R. (2017). *Politics, Policy and Higher Education in India*. Kolkata, India: Palgrave Macmillan.

Central Square Foundation (CSF) (2020). *State of the Sector Report on Private Schools in India*. Retrived from: https://centralsquarefoundation.org/State-of-the-Sector-Report-on-Private-Schools-in-India.pdf

Das, S. (2007). The higher education in India and the challenge of globalisation. *Social Scientist*, 47-67.

De Coninck, H., Klaus, I., Revi, A., Schultz, S. & Solecki, W.(2018) *Summary for urban policymakers: What the IPCC Special Report on global warming of 1.5° C means for cities.* doi:10.24943/SCTM.2018. Retrieved from: https://www.c40.org/researches/summary-for-urban-policymakers-what-the-ipcc-special-report-on-global-warming-of-1-5-c-means-for-cities

Deshpande, S., & Zacharias, U. (Eds.). (2013). *Beyond inclusion: The practice of equal access in Indian higher education*. New Delhi: Routledge.

Deshpande, S. (2006). Exclusive inequalities: Merit, caste and discrimination in Indian higher education today. *Economic and Political Weekly*, 2438-2444.

Dholakia, H. H., Mishra, V., Garg, A. (2015). *Predicted increases in heat related mortality under climate change in urban India*. IIM (Working Paper).

Eckstein, D.; Künzel, V., Schäfer, L.; Winges, M. (2020). Global Climate Risk Index. Germanwatch ISBN 978-3-943704-77-8.

Facer, K., Lotz-Sisitka, H., Ogbuigwe, A. Vogel, C., Barrineau, S (2020) *TESF Briefing Paper: Climate Change and Education*. Bristol, TESF.
Retrieved from: https://tesf.network/wp-content/uploads/2020/05/TESF-BRIEFING-NOTE-Climate-Change-and-Education-V2.pdf

Ghosh, J. (2008). Caste and discrimination in higher education: Evidence from the National sample surveys. In *Paper for Conference on Affirmative Action in Higher Education in India, the United States and South Africa*. New Delhi, p. 9-21.

Ghosh, J. (2006). Case for caste-based quotas in higher education. *Economic and Political Weekly*, 2428-2432.

GoI. (Government of India) (1966). *Education and National Development: Report of the Education Commission 1964-66* . New Delhi: Ministry of Education, Government of India.

GoI. (1968) *National Policy on Education 1968*. New Delhi: Ministry of Education, Government of India.

GoI. (1986). *National Policy on Education.* New Delhi: MHRD, Government of India.

GoI. (2000). Report on a Policy Framework for Reforms in Education by the Special Subject Group on Policy Framework for Private Investment in Education, Health and Rural Development. Prime Minister's Council on Trade and Industry. New Delhi: GoI, April 2000.
Retrieved from:
https:// ispepune.org.i n/PDF% 20I SSUE/2003/JI SPE 403/2 038DO CU-3. PDF

GoI. (2009). *The Right of Children to Free and Compulsory Education Act.* New Delhi: Gazette of India, Government Press.

GoI. (2012). *Vision of Teacher Education in India: Quality and Regulatory Perspective, Report of the High-Powered Commission on Teacher Education Constituted by the Hon'ble Supreme Court of India.* New Delhi: MHRD.

GoI. (2019*). Draft National education Policy, New Delhi: Department of School Education and Literacy, MHRD*.
Retrived from:
https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/Draft_NEP_2019_EN_Revised.pdf

GoI. (2020). *National Education Policy, New Delhi: Department of School Education and Literacy, MHRD*.
Retrived from:
https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

Goswami, A. (2012). Higher Education Law and Privately Funded University Education in India. *India Infrastructure Report*, 185-98.

Gupta, M. (2014). *Sri Aurobindo's Vision of Integral Human Development: Designing a Future Discipline of Study*. Springer.

Jain, G., Jigyasu, R., Gajjar, S.P., Malladi, T. (2015). *Cities Provide Transformational Opportunity to Reduce Risk Accumulation.* Bengaluru: Indian Institute for Human Settlements.

Kanuri, C., Revi, A., Espey, J. and Kuhle, H. (2016*). Getting started with the SDGs in cities: A guide for stakeholders*. Paris: Sustainable Development Solutions Network.

Krishnan, R., Sanjay, J., Gnanaseelan, C., Mujumdar, M., Kulkarni, A., & Chakraborty, S. (2020). *Assessment of Climate Change over the Indian Region: A Report of the Ministry of Earth Sciences (MoES), Government of India.* Springer Singapore.

Kumar, K. (2005). *Political Agenda of Education*. New Delhi: Sage Publications.

Kumar, K. (2010). Quality in education: Competing concepts. *Contemporary Education Dialogue*, *7*(1), 7-18.

Kumar, K., Priyam, M., & Saxena, S. (2001). Looking beyond the smokescreen: DPEP and primary education in India. *Economic and Political Weekly*, 560-568.

Kumar, K., Sahai, A., Kumar, K., Patwardhan, S., Mishra, P., Revadekar, J., Kamala, K & Pant, G. (2006). High-resolution climate change scenarios for India for the 21st century. *Current Science, 90*(3), 334-345.

Kundu, P. (2019). *To improve quality of school education India must spend more on its teachers*. Retrieved from: https://www.indiaspend.com/to-fix-poor-quality-of-school-education-teacher-training-holds-the-key/

Mallya, G., Mishra, V., Niyogi, D., Tripathi, S., & Govindaraju, R. S. (2015). Trends and variability of droughts over the Indian monsoon region. *Weather and Climate Extremes, 12*, 43–68.

Masson-Delmotte, V. et al. (2018). *Global warming of 1.5 C*. An IPCC Special Report on the impacts of global warming Geneva IPCC.

MHRD (2018a). *Educational Statistics at a Glance. New Delhi: Ministry of Human Resources Development, Government of India*. Retrieved from: https://www.mhrd.gov.in/educational-statistics-glance-2018

MHRD (2018b). *Catalysing Transformational change in school Education: Performance Grading Index of All States and UTs on School Education – 2017-18*. New Delhi: Department of School Education and Literacy, MHRD, Government of India. Retrieved from: https://www.unicef.org/india/media/2596/file/Catalysing-transformational-change-in-school-education.pdf

MHRD (2018c). *Analysis of Budgeted Expenditure on Education 2014-15 to 2016-17*. New Delhi: Department of Higher Education, Ministry of Human Resources Development, Government of India. Retrieved from: https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/statistics-new/ABE2014-17.pdf

MHRD (2014). *Statistics of School education: 2011-12*. New Delhi: Ministry of Human Resources Development, Government of India. Retrieved from: https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/statistics/SSE1112.pdf

MHRD (2011). *Selected Educational Statistics*. New Delhi: Ministry of Human Resources Development, Government of India.

Minault, G. (1988). Legal and Scholarly Activism: Recent Women's Studies on India - A Review Article. *The Journal of Asian Studies*, *47*(4), 814-820.

Ministry of Finance Government of India. (2020). *Economic Survey of India 2019-20* (Vol. 1). New Delhi: MoF, Government of India.

Mochizuki, Y. and Bryan, A. (2015). Climate Change Education in the Context of Education for Sustainable Development: Rationale and Principles. *Journal of Education for Sustainable Development*. 9. 4-26.

MOEFCC (2015). *India's Intended Nationally Determined Contribution to UNFCCC*. New Delhi: MOEFFC.

MOEFCC (2018). *India: Second Biennial Update Report to the UNFCCC*. New Delhi: MOEFFC.

MoSPI (Ministry of Statistics and Programme Implementation) (2019). *Women & Men in India: 2019*. New Delhi: Social Statistics Division National Statistical Office, MoSPI, Government of India. Retrieved from: http://mospi.nic.in/sites/default/files/reports_and_publication/statistical_publication/Women_Men/Women_and_Men_31_%20Mar_2020.pdf

Naik, J. P. (1975). *Equality, Quality and Quantity: The elusive triangle of Indian education.* Bombay: Allied Publishers.

Naik, J. P. (1982). *The education commission and after*. New Delhi: APH Publishing.

Nambissan, G. B., & Batra, P. (1989). Equity and excellence: Issues in Indian education. *Social Scientist*, 56-73.

NCERT. (2005). *National Curriculum Framework (NCF), 2005.* New Delhi: National Council for Educational Research and Training.

NCTE. (2009). *National Curriculum for Teacher Education (NCFTE): Towards a Humane and Professional Teacher.* New Delhi: National Council for Teacher Education.

O'Brien, K. & Leichenko, R. (2019). Toward an integrative discourse on climate change. *Dialogues in Human Geography*, *9*(1), 33-37.

Pieterse, E. & Revi, A. (2013) Teaching for Tomorrow, *Cityscapes* (57-68 pp). Retrieved from: https://bit.ly/39S0uRn

Pinar, W. F. (2015). *Curriculum Studies in India: Intellectual Histories and Present Circumstances.* New York: Palgrave Macmillan.

Pramanik, M. K. (2017). Impacts of predicted sea level rise on land use/land cover categories of the adjacent coastal areas of Mumbai megacity, India. *Environ Dev Sustain, 19*, 1343–1366.

Priyadarshini, P., & Abhilash, P. C. (2019). Promoting tribal communities and indigenous knowledge as potential solutions for the sustainable development of India. *Environmental Development*, *32*, 100459.

Ramachandran, V. (2003). Backward and Forward Linkages that Strengthen Primary Education. *Economic and Political Weekly*, 8 March, 38 (10) pp. 959-968.

Ramachandran, R. (2008). Bangalore looks to new interdisciplinary science centre. *Physics World*, *21*(09), 7.

Reddy, Y. V (2006). *Importance of Productivity in India Reserve Bank of India Bulletin*, January 2006, 65-72.

Rege, S. (2010). Education as Trutiya Ratna: Towards Phule-Ambedkarite Feminist Pedagogical Practice. *Economic and Political Weekly, 45*(40), 88-98.

Revi, A., Ray, M., Mitra, S., Anand, S., Sami, N., Malladi, T. (2020*). Report to the XV Finance Commission on The Potential of Urbanisation to Accelerate Post-COVID Economic Recovery*

टीईएसएफ बैकग्राउंड पेपर सीरिज में नेटवर्क प्लस के कामों के विषय में हमारी कुछ आधारभूत अवधारणाओं का खाका पेश किया गया है। इसी के आधार पर हम आगामी प्रस्ताव आमंत्रित करेंगे। इनमें से कई बैकग्राउंड पेपर्स हमारे संक्षिप्त ब्रीफिंग नोट्स से निकले हैं। ये दस्तावेज टीईएसएफ के समूचे जीवन चक्र के दौरान हमने सामूहिक रूप से क्या कुछ सीखा है, इसके बारे में एक साझा समझ विकसित करने में मदद देते हैं। इस प्रक्रिया की दिशा-दशा को समझने के लिए आप हमारे **संसाधन पृष्ठ** पर जा सकते हैं। वहां आप दूसरे बैकग्राउंड पेपर्स तथा नेटवर्क प्लस के अन्य दस्तावेज और पेपर्स को देख सकते हैं।

आभारः टीईएसएफ इस बैकग्राउंड पेपर के लिए इकॉनॉमिक ऐण्ड सोशल रिसर्च काउंसिल (यूके) से मिली आर्थिक सहायता के लिए उनका आभार व्यक्त करता है (अवार्ड शीर्षक : ‘यूकेआरआई जीसीआरएफ ट्रांसफॉर्मिंग सस्टेनेबल डेवलपमेंट (टीईएस4एसडी) नेटवर्क प्लस’)।

संपर्कः pbatra.tesf@iihs.ac.in
batra.poonam@gmail.com

संस्तुत साइटेशन : बत्रा, पी. रेवी,ए, बज़ाज़,ए सिंह, सी एवं पुनाचा, पी (2021), टीईएसएफ इंडिया बैकग्राउंड पेपर, ब्रिस्टल, टीईएसएफ एवं आईआईएचएस
https://doi.org/10.5281/zenodo.5245290

अनुवाद : योगेंद्र दत्त

संस्करण 2.0, 2021 सितम्बर में प्रकाशित।

कॉपीराईट : टीईएसएफ
यह दस्तावेज CC BY-NC-SA International 4.0 License के अंतर्गत प्रकाशित किया गया है।

Attribution-NonCommercial-ShareAlike
4.0 International (CC BY-NC-SA 4.0)

इस लाइसेंस के माध्यम से दूसरों को भी गैर-व्यावसायिक उद्देश्य से इस दस्तावेज में निहित पाठ का पुनर्विश्लेषण करने, उसमें काट-छांट करने और उसके आधार पर कोई नई बात कहने की छूट देता है।

इस छूट के आधार पर जो भी रचना सामने आएगी, उसमें इस दस्तावेज के लेखकों का उल्लेख जरूर हो और वह रचना गैर-व्यावसायिक हो। साथ ही, इस दस्तावेज के आधार पर तैयर होने वाली कोई भी डेरिवेटिव कृति यानी व्युत्पन्न कृति भी इस लाइसेंस की शर्तों के अनुसार ही उपलब्ध करानी होगी।

इस दस्तावेज में जो तस्वीरें और छवियां प्रस्तुत की गई हैं वे इस लाइसेंस से बाहर हैं। इनका अधिकार मूल कलाकार के पास सुरक्षित है।

तस्वीरों का आभार

कवर फोटो एवं सारांश फोटो pxhere से
पाठ्यपुस्तक लिए लड़की pxhere से
अमरूद के पेड़ तले खड़े लड़के pxhere से
सूर्योदय और बच्चा pxhere से
कंप्यूटर क्लासरूम में मौजूद लोग pxhere से
सड़क पर जाता परिवार pxhere से
छलांग लगाते बच्चे pxhere से
स्कूल की इमारत के बाहर खड़े बच्चे pxhere से
शहर की भीड़ भरी सड़कें pxhere से

TE|SF

TESF is a GCRF funded Network Plus, co-ordinated out of the University of Bristol, working with partners in India, Rwanda, Somalia/Somaliland, South Africa the United Kingdom and the Netherlands.
We undertake collaborative research to Transform Education for Sustainable Futures.

TESF partner institutions are:
Indian Institute for Human Settlements
Rhodes University
Transparency Solutions
University of Bristol
University of Nottingham
University of Rwanda
Wageningen University

www.tesf.network
info@tesf.network
@TransformingESF

The Author Team

Poonam Batra
University of Delhi
Aromar Revi, Amir Bazaz, Chandni Singh, Prathigna Poonacha
Indian Institute for Human Settlements